आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-२० * अंक-१ * सितम्बर-२०२५

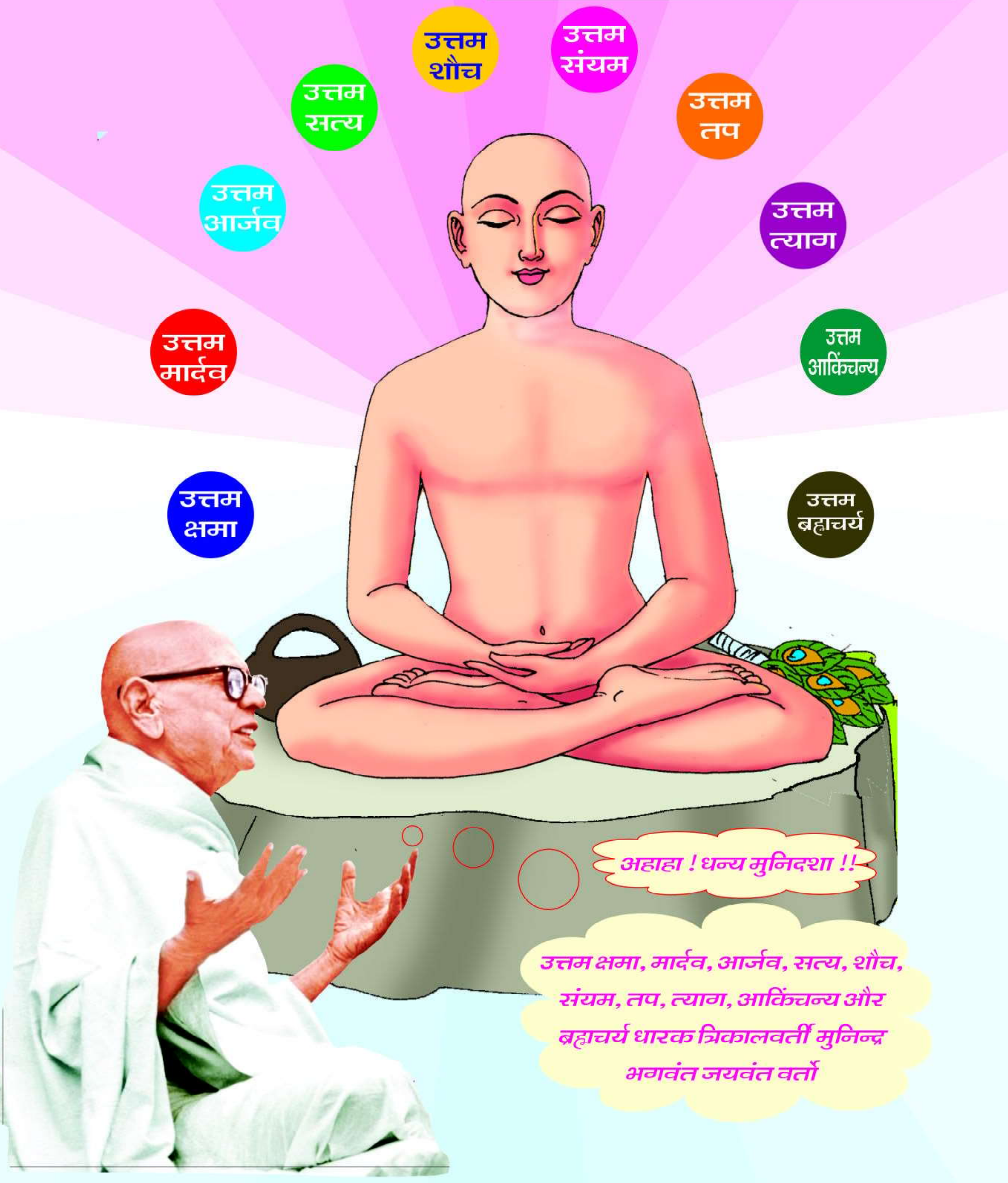

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● जहाँ प्रयोजन ऐसा हो जो वस्तुको भेदरूपमें तो सर्वलोक जानता है—और जो जानता है वह ही प्रसिद्ध है, इसीसे तो लोक पर्यायबुद्धि है। जीवकी नर-नारकादि पर्यायें हैं, राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादि पर्यायें हैं तथा ज्ञानके भेदरूप मतिज्ञानादि भी पर्यायें हैं, इन सब पर्यायोंको ही लोक जीव मानते हैं। इससे उन पर्यायोंमें अभेदरूप अनादि अनंत एक भावरूप चेतनाधर्मको ग्रहण करके, उसे निश्चयनयका विषय कहके जीवद्रव्यका ज्ञान कराया और पर्यायाश्रित भेदनयको गौण बताया, अभेद-दृष्टिमें तो (भेदनय) दिखता ही नहीं इससे अभेदनयका दृढ़ श्रद्धान करानेके लिये कहा कि—पर्यायनय है वह व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। सो भेदबुद्धिका एकान्त निराकरण करनेके लिये यह कहना सत्य जानना।११५।

(श्री स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा-३१२ का भावार्थ)

● जिस प्रकार लोकमें यह तृणाग्नि है, यह काष्ठाग्नि है, यह कन्डेकी अग्नि है और यह पाषाणाग्नि है, इत्यादिरूप अग्निको कहनेमें आता है, परन्तु वास्तवमें वह अग्नि, तृण, काष्ट और पत्थर आदिरूप हो जाती नहीं, कारण कि वह उनसे वस्तुपने भिन्न है। उसी प्रकार जीव भी नव तत्त्वोंमें देखनेमें आता है परन्तु वह वस्तुतः नव तत्त्वरूप हो जाता नहीं।११६। (श्री राजमल्लजी, श्री पंचाध्यायी, भाग-२, गाथा-१६ भावार्थ)

● सम्यग्ज्ञानका आभूषण ऐसा यह परमात्मतत्त्व समस्त विकल्प समूहोंसे सर्वतः मुक्त (सर्व तरफसे रहित) है। ऐसा सर्व नयसमूह सम्बन्धी यह प्रपंच परमात्मतत्त्वमें नहीं तो फिर वह ध्यानावली इसमें किसप्रकार उपजी, (अर्थात् ध्यानावली परमात्मतत्त्वमें कैसे हो सकती है) वह कहो।११८। (श्री पद्मप्रभमलधारीदेव, नियमसार टीका, श्लोक-१२०)

● कोई प्रश्न करे कि रागादि जीवके भाव हैं और परभाव स्पर्शादिक हैं, तो रागादिको परभाव क्यों कहा ? उसका समाधान—शुद्ध निश्चयनयसे रागादि जीवके नहीं। ये भी पर हैं। कैसे ?—कि ये भावकर्म हैं, उनके नाशसे मोक्ष है। 'पर' हैं तो छूटते हैं। इसलिये उन्हें 'पर' ही कहना चाहिये। जब यह जीव रागादिकको अपना नहीं माने तब भवबंध पद्धति मिटे। इसलिये पर-रागादि छोड़कर शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र है इन्हें स्व जानकर ग्रहण करें यही मोक्षका मूल है। परिणाम जैसा करो उसी प्रकार होता है इसलिये परकी ओरसे हटकर स्वरूपमें ध्यान लगाते ही निजपरिणाम है।११९।

(श्री दीपचंदजी, अनुभवप्रकाश, पृष्ठ-२९)

वर्ष-20
अंक-1

वि. संवत
2081
September
A.D. 2025

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

भाद्रपद पंचमीसे प्रारम्भ होनेवाले पर्युषण जैनशासनमें धर्मकी आराधनाका पर्वके रूपमें प्रसिद्ध है। इस पर्वको 'दसलक्षणी पर्व' कहा जाता है। 'पर्युषण' अर्थात् सर्व प्रकारसे आत्माकी उपासना, मुख्यरूपसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रपूर्वक उत्तमक्षमादि दसधर्मके धारक मुनि भगवंतको होती है, इसलिये मुनिवरोंकी प्रधानतासे यह आराधना पर्व 'दसलक्षणी पर्व'के रूपमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार दसलक्षणी पर्व वास्तवमें रागका पर्व नहीं है लेकिन सम्यग्दर्शनपूर्वककी वीतरागी आराधनाका पर्व है। इस महामंगल पर्व प्रसंगमें वीतरागी आराधनाके आराधक संतोंके चरणोंमें अतिशय भक्तिपूर्वक नमस्कार करके, हम भी सर्व प्रकारके उद्यम सह इस पवित्र आराधनामें आत्माको शामिल करें....

संवरके हेतुभूत दस धर्म

उत्तम क्षमा आदि धर्मोंमें स्वगुण प्राप्ति तथा प्रतिपक्षी दोषकी निवृत्तिकी भावना की जाती है अतः यह संवरका हेतु हैं।

उत्तम क्षमाधर्म :–व्रतशीलका रक्षण, इस लोक और परलोकमें दुःख न होना और समस्त जगतमें सम्मान-सत्कार होना आदि क्षमाके गुण है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका नाश करना आदि क्रोधका दोष है। यह विचारकर क्षमा धारण करना चाहिए। दूसरा यदि अपने उपर क्रोध करता है और गाली देता है तो सोचना चाहिए कि ये दोष मुझमें विद्यमान ही हैं तो क्या यह मिथ्या कहता है ? यदि यह दोष अपने मनमें न हो तो सोचना चाहिए कि यह बिचारा अज्ञानसे ऐसा कहता है, अतः क्षमा ही करनी चाहिए।

उत्तम मार्दवधर्म :–निरभिमानी और मार्दवगुणयुक्त व्यक्ति पर गुरुओंका अनुग्रह होता है। साधुजन भी उसे साधु मानते हैं। गुणके अनुग्रहसे सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होती है और

उससे स्वर्गादि सुख मिलते हैं। मलिन मनमें व्रत-शील आदि नहीं ठहरते ऐसा जानकर साधुजन उसे छोड़ देते हैं। तात्पर्य यह है कि अहंकार समस्त विपदाओंकी जड़ है।

उत्तम आर्जवधर्म :–सरल हृदय गुणोंका आवास है, वे मायाचारसे डरते हैं। मायाचारीकी निंद्य गति होती है।

उत्तम शौचधर्म :–शुचि आचारवाले निर्लोभ व्यक्तिका इस लोकमें सन्मान होता है। विश्वास आदि गुण उसमें रहते हैं। लोभीके हृदयमें गुण नहीं रहते। वह इस लोक और परलोकमें अनेक आपत्तियों और दुर्गतिको प्राप्त होता है।

उत्तम सत्यधर्म :–सभी गुण सम्पदाएँ सत्यवक्तामें प्रतिष्ठित होती हैं। झूठेका बन्धुजन भी तिरस्कार करते हैं, उसके कोई मित्र नहीं रहता। जिह्वाछेदन, सर्वस्वहरण आदि दण्ड उसे भोगने पड़ते हैं।

उत्तम संयमधर्म :–संयम आत्माका हितकारी है। संयमी पुरुषकी यहाँ पूजा होती है, परलोककी तो बात ही क्या ? असंयमी जीव निरंतर हिंसा आदि व्यापारोंमें लिप्त होनेसे अशुभकर्मका संचय करता है।

उत्तम तपधर्म :–तपसे सभी अर्थोंकी सिद्धि होती है। उससे ऋद्धियोंकी प्राप्ति होती है। तपस्वियोंकी चरणरजसे पवित्र स्थान ही तीर्थ बनते हैं। जिसके तप नहीं वह तिनकेसे भी लघु है। उसे सब गुण छोड़ देते हैं। वह संसारसे मुक्त नहीं हो सकता।

उत्तम त्यागधर्म :–परिग्रहका त्याग करना पुरुषके हितके लिए है। जैसे जैसे वह परिग्रहसे रहित होता है वैसे वैसे उसके खेदके कारण हटते जाते हैं। खेदरहित मनमें उपयोगकी एकाग्रता और पुण्य संचय होता है। परिग्रहकी आशा बड़ी बलवती है; वह समस्त दोषोंकी उत्पत्तिका स्थान है। जैसे पानीसे समुद्रका बड़वानल शान्त नहीं होता उसी तरह परिग्रहसे आशा समुद्रकी तृप्ति नहीं हो सकती। यह आशाका गड्ढा दुष्पूर है। इसका भरना बहुत कठिन है। प्रतिदिन जो उसमें डाला जाता है वही समाकर मुंह बाने लगता है।

उत्तम आकिंचन्यधर्म :–शरीर आदिसे ममत्वशून्य व्यक्ति परम संतोषको प्राप्त होता है। शरीरादिमें राग करनेवालेके सदा संसार-परिभ्रमण सुनिश्चित है।

उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म :–ब्रह्मचर्यको पालन करनेवालेके हिंसा आदि दोष नहीं लगते। नित्य गुरुकुलवासीको गुणसम्पदाएँ अपने आप मिल जाती हैं। स्त्रीविलास-विभ्रम आदिका शिकार हुआ प्राणी पापोंका भी शिकार होता है। संसारमें अजितेन्द्रियता बहुत अपमान कराती है।

—इस तरह उत्तम क्षमा आदि गुणोंका तथा क्रोधादि दोषोंका विचार करनेसे क्रोधादिकी निवृत्ति होने पर तन्निमित्तक कर्मोंका आस्रव रुककर महान संवर होता है।

—श्रीमद् अकलंकदेव

'उत्तमक्षमा' कब होती है?

आत्माकी पर्यायमें जो पुण्य-पाप होते हैं, उनकी रुचि होती है–वही अनन्त क्रोध है। ज्ञायकस्वभावकी रुचिके द्वारा उस क्रोधका नाश करना ही उत्तमक्षमारूप चारित्रदशा प्रगट होनेका बीज है। और स्वभावकी रुचिके पश्चात् विशेष स्थिरता द्वारा वीतरागभाव प्रगट करके पुण्य–पापका नाश करना सो उत्तमक्षमा है। ऐसी क्षमा मुनिदशामें होती है। आज उस उत्तमक्षमाकी आराधनाका दिन है। उत्तमक्षमाकी आराधना मुनियोंको तो सदैव रहती है। यह आराधना तो जीव जब चाहे उसी समय कर सकता है, किन्तु आज विशेषरूपसे उसका स्मरण करके साधक जीव उसकी भावना करते हैं।

उत्तमक्षमाके अतिरिक्त अन्य चार क्षमाएँ

क्षमाके पाँच प्रकार हैं, उनमेंसे चार तो पुण्यबंधके कारणरूप हैं और पाँचवेंको 'उत्तमक्षमा' कहा जाता है, वह धर्म है।

(१) 'यदि मैं क्रोध करूँगा तो मुझे हानि होगी, यदि मैं इस समय सहन नहीं करूँगा तो भविष्यमें मुझे अधिक हानि होगी'—ऐसे भावसे क्षमा करे तो वह रागरूप क्षमा है। जिसप्रकार निर्बल मनुष्य बलवानका विरोध नहीं करता वैसे ही—'यदि मैं क्षमा करूँ तो मुझे कोई हैरान नहीं करेगा'—ऐसे भावसे क्षमा रखना सो बन्धका ही कारण है। क्योंकि उसमें क्रोधादि करनेकी भावना दूर नहीं हुई। मेरा स्वरूप ही किसी प्रसंग पर क्रोध करनेका नहीं है, मैं तो ज्ञान ही करनेवाला हूँ'—ऐसी प्रतीतिके बिना कभी भी क्षमाधर्म नहीं होता; किन्तु शुभरागरूप क्षमा होती है, वह बन्धका कारण है, किन्तु धर्म नहीं है।

(२) 'यदि मैं क्षमा करूँ तो दूसरेकी ओरसे मुझे लाभ होगा,—ऐसे भावसे मालिक आदिकी बातें (फटकार) सहन करे और क्रोध न करे तो वह भी वास्तविक क्षमा नहीं है।

(३) 'यदि मैं क्षमा नहीं करूँगा तो कर्मबन्ध होगा और नरकादि दुर्गतिमें जाना पड़ेगा, इसलिए मैं क्षमा कर दूँ तो कर्मबन्ध हट जायेगा,—ऐसे भावसे क्षमा करे तो वह सच्ची क्षमा नहीं है, वह क्षमा बन्धका कारण है।

(४) क्रोधादि न करनेकी वीतरागकी आज्ञा है और शास्त्रोंमें भी वैसा कहा है, इसलिए मुझे क्षमा करना चाहिए, जिससे मुझे पापबन्ध न हो—ऐसे भावोंसे क्षमा धारण करना वह भी पराधीन क्षमा है राग है, उससे धर्म नहीं होता।

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा ७५-७६ के प्रवचनमेंसे)

पुण्य दुःखका साधन है

शुभ उपयोगसे उपार्जित पुण्य कर्म है और उस कर्मके कारणसे विधविध सामग्रीयाँ मिलती हैं। वह पुण्य देवों तकके सभी अज्ञानी जीवोंको विषय तृष्णा उत्पन्न करती है। अज्ञानी जीवोंको स्वरुचि नहीं और शुभके फलमें सामग्रीयाँ मिलती हैं। अज्ञानी जीव सामग्रीमेंसे सुख प्राप्तिकी मिथ्या भ्रांतिके कारण विषय तृष्णा उत्पन्न करता है। पदार्थ तृष्णा कराते नहीं है। लेकिन अज्ञानी जीव स्वयंके सुखस्वभावको भूलकर संयोगी दृष्टि करता है। इसलिये पुण्य और सामग्रीयाँ तृष्णा कराती हैं ऐसा कहनेमें आता है।

जैसे कृमि मलिन रुधिरमें आसक्त रहता है। वैसे समस्त अज्ञानी जीव पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर लीन देखनेमें आता है। इसलिये अज्ञानी जीवोंको तृष्णा है। ऐसा निश्चित् होता है कि पुण्य तृष्णाका निवासस्थान है ऐसा अविरोधरूपसे निश्चित होता है। अनुकूलताके संयोगवाला जीव, अनुकूलतामें राग करके और प्रतिकूलताके संयोगवाला जीव प्रतिकूलतामें द्वेष करके दुःखी दुःखी हो रहा है। इसलिये पुण्य सुखका साधन नहीं है लेकिन दुःखके बीजरूप तृष्णाका साधन है।

जिस जीवको तृष्णा है। वह जीव तृष्णासे दुःखी दुःखी हो रहा है। वह मरणपर्यंत सुखकी इच्छा करता और दुःख सहन नहीं होने पर विषयोंको भोगता है। पूर्वमें जीवोंने शुभभाव किये हो उससे द्रव्य पुण्य बंध होता है और उसके फलरूप अनुकूल संयोगकी प्राप्ति होती है। वह संयोगोंमें तृष्णा करता है। देव तकके सभी संसारी जीव अनेक प्रकारकी तृष्णा करते है और तृष्णा दुःखका बीज है इसलिये वे अत्यंत दुःखी है।

जिस जीवको शरीरमें रोग होता है, निर्धनता आती है, प्रतिकूल संयोग आते हैं, पुत्रका मरण हो जाय, पुत्री विधवा हो जाती है, इज्जत-प्रतिष्ठा चली जाय ऐसे संयोग रुचिकर नहीं लगते है और द्वेष करता है। वह जीव इच्छा करता है कि पूर्वमें शातावेदनीय कर्म किये

श्री अरनाथ जिन-स्तुति

सर्वथा कथनमें दोषरूप,
यदि स्याद्वाद हों पुष्टरूप।१०१।

श्री स्वयंभू-स्तोत्र

होते तो ठीक होता। ऐसे जीव पुण्यकी भावना कर रहे है, और जो जीवोंको सुखी कुटुम्ब, अच्छी दुकानदारी, शरीर निरोगी आदि सभी प्रकारकी अनुकूलता हो तो ऐसी ही ऐसी बनी रहे ऐसी इच्छा करता है। वह पुण्यकी भावना करता है। अनुकूलताका कामी प्रतिकूलता आने पर दुःखी हो जाता है और प्रतिकूलताका द्वेषी अनुकूलताकी भावना करता है। सब अनुकूलता हो तो धर्म होता है ऐसी जिसकी रुचि है उसे पुण्यकी रुचि है लेकिन स्वभावकी रुचि नहीं है। यहाँ कोई प्रश्न करता है कि देव-गुरु-शास्त्रकी प्रभावना कौन करेगा ?

तो भाई ! पैसेके कारण प्रभावना होती नहीं है और प्रभावनाके कारण आत्माकी पर्यायमें असर होती नहीं है। सब अपनी स्वयंकी प्रभावना करते है। आत्माको पहिचाने वह लक्ष्मीवान और न पहिचाने वह दरिद्र है। यहाँ तो शुभोपयोग, उसका फल शाताकर्म, उसका फल तृष्णा, राग तथा अशुभोपयोग, उसका फल अशाताकर्म, उसके फलमें तृष्णा, द्वेष ऐसे छह प्रकारको एक समान कहा गया है।

जो जीव चिदानंद स्वरूपको भूल जाता है, वह चाहे तो शुभमें हो या अशुभमें वह भी दुःखी है। जैसे कृमि मलिन रुधिरको चूसता है। रुधिरको चूसना छोड़ना उसको रुचिकर नहीं है और क्रमशः रुधिर चूसते चूसते ही मृत्युको प्राप्त हो जाता है। वैसे अज्ञानी, पुण्यवान, पापशालीओंकी भांति तृष्णारूपी दुःखके अंकुरसे जीत लिये गये है। इसलिये विषयोंकी ही इच्छा करता है, और मृत्युपर्यंत दुःखको भोगता है। पैसाकी गृद्धि मरणांतक, दुकानके वहीवटको छोड़ना नहीं चाहता है। भोजनका पिपासु जीव वैद्यकी मनाई करने पर भी नहीं खाने योग्य पदार्थ खाता है और मृत्युको प्राप्त होता है। इसलिये पुण्य तृष्णा उत्पन्न करता है। इसलिये पुण्य दुःखका साधन है।

इन्द्रियका सुख परके सम्बन्धवाला है, अवरोधवाला है, खंडखंड है, बंधका कारण है और अस्थिर है इसलिये पुण्यजनित होने पर भी दुःखरूप ही है। (१) ज्ञानस्वभावका सम्बन्ध रखकर उत्पन्न होनेवाला अतीन्द्रिय सुख स्वाश्रयी और स्वाधीन है। जब कि ज्ञानस्वभावको छोड़कर पुण्यकी रुचि करके उत्पन्न होनेवाला इन्द्रियसुख पराश्रयी और पराधीन है तथा इष्ट पदार्थके संयोगकी अपेक्षा रखता है। इसलिये वह पराधीन है।

(२) ज्ञानस्वभावके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाला सुख बाधा रहित है। उसे किसी भी प्रकारका विघ्न होता नहीं है इसलिये अनाकुल है। ऐसे ज्ञान स्वभावकी रुचि नहीं करते

सर्वथा नियमका त्यागकार,
जिस नय श्रुत देखा पुष्टकार;

पुण्यकी रुचि करके उत्पन्न होनेवाला इन्द्रिय सुख पथ पथ पर बाधावाला है, विघ्नवाला है। कभी खानेकी इच्छा होती है, कभी पीनेकी इच्छा होती है, कभी संसारके भोगनेकी इच्छा होती है, कभी व्यापारकी, प्रतिष्ठाकी, सेठाईकी—ऐसे एकके बाद एक तृष्णा प्रकट होती ही रहती है इसलिए इन्द्रिय सुख आकुलतावाला है।

(३) ज्ञानस्वभावके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाला अतीन्द्रिय सुख अविच्छिन्न अर्थात् धाराप्रवाहरूप है और प्रतिपक्षसे रहित है। इसलिये धारावाही सुख है। जब कि ज्ञानस्वभावको भूलकर पुण्यकी रुचि करके उत्पन्न होनेवाला इन्द्रिय सुख खंड खंडवाला है और विपक्षवाला है। क्योंकि अशातावेदनीय कर्मका उदय आता है तब शातावेदनीय होता नहीं है अलग हो जाता है। राजा रंक हो जाता है, धनवान निर्धन हो जाता है, निरोगी रोगी हो जाता है।

कृष्ण-वासुदेव तथा बलदेव दोनों भाई थे। द्वारका ऋद्धि-समृद्धिसे संपन्न थी। खमा खमा होती थी। जिनके हाथके प्रहारसे पहाड़ तूट जाता था, पुण्य नाश हुआ, द्वारिका जल रही थी अपने माता-पिताको लेने गये, जलते महेलमेंसे माता-पिताको बाहर निकालने जाते हैं वहाँ आकाशवाणी होती है कि ''मत खिंचो दरवाजा अभी तूट जायेगा। माता-पिताको बाहर नहीं निकाल पाओगे।'' दोनों भाई वापिस जाते है और दरवाजा तूटता है और माता-पिताकी मृत्यु हो जाती है। दोनों भाई अकेले चल पड़ते है। सेवामें रहनेवाले देव थे वे चले गये, नगरजन खिसक गये, द्वारिकाको बुझाने हेतु समुद्रका पानी ड़ालते हैं तो वह भी तेलरूप हो जाता है। इस प्रकार पुण्य समाप्त हो जाता है। इस प्रकार शातावेदनीयसे मिलता इन्द्रिय सुख विच्छिन्न-खंडखंडरूप है। देखो, उस समयके महान पुण्यशाली वासुदेव, बलदेव अपने नगरकी रक्षा न कर सके और अकेले चल निकलते है। तो अभीके अज्ञानी जीव ऐसा मानते है कि समाजकी व्यवस्था अच्छी तरह करना और गरीबोंको ठीक स्थितिमें रखना चाहिये यह सभी अज्ञानभाव है। परपदार्थकी व्यवस्था और बदलाव करनेमें कोई समर्थ नहीं है। यहाँ तो शुभके फलमें प्राप्त सामग्रीसे होनेवाला इन्द्रिय सुख, पराधीन, खंडखंडवाला दर्शाते है इसलिये शुभोपयोग निन्द्य है।

स्वयंका आत्मस्वभाव सुखस्वरूप है ऐसी मान्यताको भूलकर पुण्यकी रुचि करनेवाले जीवको इन्द्रिय सुख मिलता है जो इन्द्रिय सुख १-पराधीन है, २-विघ्नवाला है और ३-खंड-खंड है यह बात कल आ गई है। (शेष देखे पृष्ठ २७ पर)

है 'स्यात्' शब्द तुम मत मंझर,
निज घाती अन्य न लखें सार।१०२।

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-४२ (गाथा-३७)

भगवानमें राग नहीं है, रागमें भगवान नहीं है

आत्मा स्वयंके समीप ही है, दूर नहीं लेकिन अज्ञानदशामें श्रद्धामें दूर लगता था वह अब दृष्टि पलट जाने पर, श्रद्धामें आत्मा समीप हो गया। इसलिये पांच इन्द्रियके विषयोंसे ज्ञानी अंतरमें उदास हो जाता है। तो प्रश्न होता है कि विषयोंसे ज्ञानी उदास है तो विषयोंको क्यों भोगते है? तो कहते हैं कि भाई ! विषयोंको ज्ञानी भोगते ही नहीं है। जड़की क्रिया होती है उसे मात्र जानते है। अरे ज्ञानी तो क्या अज्ञानी भी जड़-इन्द्रियके विषयोंको भोग सकता नहीं है। मात्र उसके रागमें एकत्व करके सुख-दुःख मानते है।

जिसका युवान पुत्र मर गया हो उसकी माताको कहीं चैन नहीं पड़ता। न भोजन रुचिकर लगे, नहीं पीना, नहीं सोना कहीं भी सुख लगता नहीं है। क्योंकि उसे भीतरमें चोट लग गई कि मेरा पुत्र चला गया। वैसे ज्ञानीको राग और ज्ञानके बीच चोट लग गई है–राग और आत्माका भेदज्ञान हो गया है। उसे परमें और रागमें रुचि रहे ऐसा कदापि बनता नहीं है। यही धर्मीका लक्षण है।

अहो ! धर्मी तो बारम्बार अतीन्द्रिय आनंदको याद करता है–स्मरण करता है और उसे भोगता है वहाँ उसे अन्य विषयका स्मरण कहाँसे होगा?

ज्ञानीने राग और भगवान आत्माके बीचमें छैनी मार दी है कि रागमें भगवान नहीं और भगवानमें राग नहीं। ऐसी भेदज्ञानकी छैनी मारनेके पश्चात् उसे परपदार्थका और रागका राग रहता नहीं है। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि उसे बाह्यसे भी सब छूट गया है। दृष्टि यथार्थ होनी चाहिये। वह जिसके पास नहीं और बाह्यमें सब कुछ छोड़ दे तो उसने वास्तवमें कुछ भी छोड़ा नहीं है। पर निमित्तसे मुझे लाभ-नुकशान हो ऐसी पराश्रितबुद्धि पड़ी है उसने सब कुछ छोड़ा तदपि कुछ भी नहीं छोड़ा है, धर्मको छोड़ दिया है।

कर्मसे विकार होता है, ज्ञान भी इन्द्रियाँ हो तो होता है, अच्छा संग मिले तो श्रद्धा पलटती है ऐसी पराश्रितदृष्टि जिसे पड़ी है उसे स्वाश्रितदृष्टि कहाँसे प्रकट होगी ?

है अनेकान्त भी अनेकान्त,
साधत प्रमाण नय, विना ध्वांत;

पूज्यपादस्वामी कहते है कि हे वत्स ! जैसे मछलीके अंगको रेत ही जला देती है तो वहाँ अग्निकी क्या बात करे ? वैसे अकषाय शांत स्वरूपमें रहते ज्ञानीको शुभभाव भी दुःखरूप और आकुलतारूप लगता है तो अशुभभावकी तो क्या बात करे ? शुभ और अशुभ दोनों आकुलतारूप है, दुःखरूप है, आस्रव है–विकार है और बंधके कारण है। तो जिसे अबंधस्वभावी भगवान आत्माका ज्ञान हुआ–किंमत हुई उसे बंधभावकी क्या किंमत होगी ?

इसप्रकार जिसे आत्मसंवित्ति-आत्मानुभव प्रकट हुआ है उसका लक्षण यह है कि उसे विषयोंकी रुचि होती नहीं है और जिसे आत्मसंवित्ति नहीं उसे विषयोंकी रुचि होती है।

आत्मामें ही सुख है ऐसा विश्वास होने पर विषयोंमें सुखबुद्धि छूट जाती है...इसलिये विषयोंकी रुचि भस्म हो जाती है। जिन्हें श्रद्धा-ज्ञानमें आत्माकी झलक आ जाय-समीपता हो जाय उसे विषयोंकी रुचि कैसे हो ? विषयोंमें मीठाश कैसे आये ? नहीं आती है और जिन्हें स्वयंकी मीठाशका अनुभव किया नहीं और कहता है कि मुझे विषयों प्रति अरुचि है तो यह बात मिथ्या है। स्वयंके स्वभावकी रुचि हुए बिना विषयकी रुचि छूटती ही नहीं है।

ज्ञानीको जैसे जैसे विषयोंकी आसक्ति घटती जाती है वैसे वैसे आत्मसंवित्ति वृद्धिगत होती जाती है ऐसा आत्मसंवित्तिकी उन्नतिका क्रम है। जैसे जैसे स्वभावमें एकाग्रता बढ़ती जाती है वैसे वैसे विषयोंकी आसक्ति घटती जाती है और शुद्धिकी वृद्धि होती जाती है।

इस प्रकार मुनिराजने ज्ञानीकी संवित्तिका लक्षण और उसकी वृद्धिका क्रम बतलाकर शिष्यके दोनों प्रश्नोंका उत्तर दे दिया। अहा !

चिन्मूरत दृगधारीकी मोहे रीति लगत है अटापटी;
बाहिर नारकीकृत दुःख भोगत, अंतर सुखरस गटागटी।

ज्ञानीकी रीत कोई अटपटी है। बाह्यसे चक्रवर्तीपदमें बैठे हो फिर भी उसमें सुखबुद्धि नहीं और नरकका दुःख हो तो उसमें भी दुःखबुद्धि नहीं। अस्थिरतावश रागका दुःख होता है लेकिन अंतरमें सुखरसकी गटागटी होती है। यह ज्ञानीका लक्षण है। (क्रमशः) ✻

सप्रमाण दृष्टि है अनेकान्त,
कोई नय-मुखसे है अेकांत ।१०३।

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

स्वानुभवज्ञानका वर्णन

''जैनागममें जैसा आत्माका स्वरूप कहा है, उसे वैसा जानकर उसमें परिणामोंको मग्न करता है, इससे उसे आगम-परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

अथवा, मैं आत्मा ही हूँ, इसलिये मेरेमें ज्ञान है; जहाँ जहाँ ज्ञान है वहाँ वहाँ आत्मा है,—जैसे सिद्धादिक; और जहाँ आत्मा नहीं वहाँ ज्ञान भी नहीं,–जैसे मृतकक्लेवरादिक; इस प्रकार अनुमान द्वारा वस्तुका निश्चय करके उसमें परिणामोंको मग्न करता है, इससे उसे अनुमान-परोक्षप्रमाण भी कहते हैं।

अथवा, आगम-अनुमानादिक द्वारा जिस वस्तुको जाना उसे याद रखके उसमें परिणामोंको मग्न करता है इससे उसे स्मृतिरूप परोक्षज्ञान कहते हैं। इत्यादि प्रकारसे स्वानुभवमें परोक्ष प्रमाणके द्वारा ही आत्माको जाननेका होता है। बादमें, जो स्वरूप जाननेमें आया उसीमें ही परिणाम मग्न होता है, उसका कोई विशेष जानपना नहीं होता।''

देखो, आत्माको जाने वह प्रत्यक्ष और परको जाने वह परोक्ष–ऐसी व्याख्या नहीं है; क्योंकि मति-श्रुतज्ञान आत्माको जानते हैं तो भी उनको परोक्ष गिने हैं, और अवधि-मनःपर्ययज्ञान परको जानते हैं तो भी उनको प्रत्यक्ष गिने हैं। जो ज्ञान स्पष्ट हो और सीधा आत्मासे होता हो वह प्रत्यक्ष है; और जो ज्ञान अस्पष्ट हो, जिसमें इन्द्रियादि परका कुछ अवलम्बन हो वह परोक्ष है। यहाँ मति-श्रुतज्ञान जब स्वसन्मुख होके स्वानुभवमें वर्तता है तब इसमेंसे इन्द्रिय-मनका जितना अवलम्बन छूटा इतना तो प्रत्यक्षपना हुआ, इसमें जो स्वानुभव हुआ वह अकेले सीधे आत्मासे ही हुआ है, इसमें अन्य किसीका अवलम्बन नहीं है, और वह स्वानुभव स्पष्ट है इसलिये वह प्रत्यक्ष है। यह प्रत्यक्षपना अध्यात्मदृष्टिवालेको ही समझमें आता है। अहा, मति-श्रुतज्ञान इन्द्रिय-मनके बिना जानें !....भाई, जाननेका स्वभाव तो आत्माका है न ? आत्मा स्वयं अपनेको मन व इन्द्रियके बिना ही जानता है। प्रवचनसारकी १७२ वीं गाथामें 'अलिंगग्रहण'के २० अर्थ करते हुए आचार्यदेवने स्पष्ट कहा है कि आत्मा अकेले अनुमान द्वारा या अकेले इन्द्रिय-मनके द्वारा जाननेमें नहीं आता, अर्थात् केवल परोक्षके द्वारा वह जाना नहीं जाता।

निरुपम प्रमाणसे सिद्ध धर्म,
सुखकर हितकर गुण कहत मर्म;

इन्द्रियजन्य मति-श्रुतज्ञानको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है वह परके जाननेकी अपेक्षासे कहा है, स्वके जाननेमें तो वह ज्ञान इन्द्रियातीत स्वानुभवप्रत्यक्ष है। यह स्वानुभवप्रत्यक्षपना अध्यात्मशैलीमें है, अतः आगमकी शैलिमें प्रत्यक्ष-परोक्षके जो प्रकार आते हैं उनमें इसका कथन नहीं आता। समयसारमें कहते हैं कि मैं आत्माके समस्त निजवैभवसे शुद्धात्मा दर्शाता हूँ, उसे तुम स्वानुभवप्रत्यक्षसे प्रमाण करना। अब वहाँ श्रोताजन तो मति-श्रुतज्ञानवाले ही हैं, और उनको ही मति-श्रुतज्ञानसे स्वानुभवप्रत्यक्ष करनेका कहा है। यदि स्वानुभवमें मति-श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष न हो तो ऐसा क्यों कहते ?

यहाँ कहते हैं कि, धर्मात्माने ऐसा स्वानुभव करनेके पहले आगम द्वारा तथा अनुमानादिके द्वारा आत्माका यथार्थ स्वरूप निश्चित किया है, बादमें उसमें परिणामको लीन करके स्वानुभव करता है।

आगममें अरिहन्तके आत्माका उदाहरण देकर आत्माका शुद्ध स्वभाव दिखाया है। अरिहन्तका आत्मा द्रव्यसे-गुणसे व पर्यायसे जैसा शुद्ध है वैसा ही आत्माका स्वभाव है, अरिहन्त जैसा सर्वज्ञस्वभाव इस आत्मामें भरा है; अरिहन्तके आत्मामें शुभराग आदि विकार नहीं वैसे राग इस आत्माके भी स्वभावमें नहीं है। आगममें शुभरागको आत्माका स्वभाव नहीं कहा परन्तु परभाव कहा है, उसे अनात्मा व आस्रव कहा है। ऐसे अनेक प्रकारसे आगमके ज्ञानसे आत्मस्वरूपका निर्णय करना चाहिये। एवं अनुमानके विचारसे भी वस्तुस्वरूप निश्चित करे। जैसे कि–

मैं आत्मा हूँ...मेरे में ज्ञान है।

जहाँ जहाँ ज्ञान है वहाँ वहाँ आत्मा है, जैसे कि सिद्ध भगवान।

जहाँ जहाँ आत्मा नहीं वहाँ वहाँ ज्ञान भी नहीं, जैसे कि अचेतन शरीर।

एवं जहाँ जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ वहाँ आत्मा भी नहीं।

और जहाँ जहाँ आत्मा है वहाँ वहाँ ज्ञान भी है।

इस प्रकार आत्माके व ज्ञानके परस्पर व्याप्तिपना है, अर्थात् जहाँ एक हो वहाँ दूसरा भी अवश्य हो, और एक न हो वहाँ दूसरा भी न हो, ऐसे परस्पर अविनाभावपनेको 'समव्याप्ति' कहते हैं। 'जहाँ शरीर हो वहाँ आत्मा हो'–ऐसे तर्कसे सच्चा अनुमान नहीं हो सकता, क्योंकि सिद्धभगवानको शरीर न होने पर भी आत्मा है और मृतक क्लेवरमें शरीर होते हुए भी आत्मा नहीं है; अतः शरीरको व जीवको व्याप्ति नहीं है। शरीरके बिना आत्मा रहता है परन्तु ज्ञानके

अरजिन ! तुम सम जिन तीर्थनाथ,
नहिं कोई भवि बोधक सनाथ ।१०४।

बिना आत्मा कभी नहीं होता। इस तरह ज्ञान तो आत्माका निजस्वरूप है परन्तु शरीर तो आत्मासे भिन्न है। इसीप्रकार, शरीरकी भाँति राग-द्वेषके बिना भी आत्मा होता है, अतः राग-द्वेष भी वास्तवमें आत्माका स्वरूप नहीं है। ऐसे अनेक प्रकारकी युक्तिके द्वारा विचार करके आत्माके स्वरूपका निश्चय करना उसे अनुमान कहते हैं।

मैं आत्मा हूँ; क्योंकि मेरेमें ज्ञान है और मैं ज्ञानसे जानता हूँ।

शरीर वह आत्मा नहीं; क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं, वह कुछ जानता नहीं।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है; क्योंकि ज्ञानके बिना आत्मा कभी नहीं होता, एवं आत्माके बिना अन्यत्र कहीं ज्ञान कभी नहीं होता।

शुद्धनयसे मैं शुद्ध सिद्धसमान हूँ; अशुद्धनयसे मेरेमें अशुद्धता भी है।

शुद्धनयके आश्रयसे शुद्धात्माका अनुभव करनेसे पर्यायमेंसे अशुद्धता टलकर शुद्धता प्रकट होती है।

इस प्रकार अनुमान व नय-प्रमाणादिके विचार तत्त्वनिर्णयके कालमें होते हैं; परन्तु मात्र विचारसे ही स्वानुभव नहीं हो जाता। वस्तुस्वरूपका निर्णय करके बादमें जब स्वद्रव्यमें परिणामको एकाग्र करे तभी स्वानुभव होता है। और इस स्वानुभवके कालमें नय-प्रमाणादिके विचार नहीं रहते। नय-प्रमाणादिके विचार यह तो परोक्षज्ञान है, और स्वानुभव तो कथंचित् प्रत्यक्ष है। पहले आगम-अनुमान आदि परोक्षज्ञानसे जिस स्वरूपको जाना एवं विचारमें लिया उसमें परिणाम एकाग्र होनेपर वह स्वानुभव-प्रत्यक्ष होता है। इस स्वानुभवमें पहलेसे अन्य कोई स्वरूप जाननेमें आया—ऐसा नहीं है अतः ज्ञानीके स्वानुभवमें जानपनेकी अपेक्षासे विशेषता नहीं है परन्तु परिणामकी मग्नता है—यही विशेषता है।

आत्माके स्वानुभवका स्मरण करके उसमें परिणाम लगाते हैं।—परन्तु ऐसा स्मरण किसके हो ? जिसने कि पहले एकबार अनुभवके द्वारा स्वरूपको जान लिया हो, इसकी धारणा टिकायी हो, वह फिरसे इसका स्मरण करे। 'पहले आत्माका अनुभव हुआ तब ऐसा आनन्द था....ऐसी शांति थी, ऐसा ज्ञान था,...ऐसा वैराग्यभाव था...ऐसी एकाग्रता थी...ऐसा उद्यम था...' ऐसे इसके स्मरणके द्वारा चित्तको एकाग्र करके धर्मीजीव फिरसे उसमें अपने परिणामको लगाते हैं। स्वानुभवके समयमें तो कुछ ऐसे स्मरणादिके विचार नहीं रहते; परन्तु पहले ऐसे विचारके द्वारा चित्तको एकाग्र करते हैं, इसलिये कहा है कि ऐसे स्मृति-अनुमान-

(शेष देखे पृष्ठ २७ पर)

मति अपनी के अनुकूल नाथ !
आगम जिन कहता मुक्तिनाथ !

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन) (प्रवचन : ७)

जिनेन्द्रदेवका भक्त अरहन्त भगवानके अतिशयोंके स्वरूपको लोकव्यवहारमें भी अन्यथा नहीं कहता; ऐसा कोई नियम नहीं कि जो भगवानके समवसरणमें जाता है वह वहाँ धर्मको प्राप्त कर ही लेता है। यदि भगवानके पास पहुँचने मात्रसे सब धर्मको प्राप्त करलें तब तो निमित्तसे कार्य हुआ कहलाया, किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। लेकिन, जो जीव वहाँ जाकर स्वयं अपने अंतरंग पुरुषार्थसे धर्मको समझता है यह धर्मको प्राप्त करता है और भगवानसे धर्मप्राप्ति हुई ऐसा निमित्तसे कहा जाता है।

प्रत्येक तत्त्व स्वतंत्र परिपूर्ण है, तू स्वतंत्र है, तुझे परकी आवश्यकता नहीं है; इसप्रकार भगवान प्रत्येक तत्त्वकी स्वतंत्रताकी घोषणा करते हैं। भगवान किसीको तार नहीं देते। यदि भगवान दूसरेको तार सकते हों तो वे समस्त विश्वके सब जीवोंको क्यों नहीं तार देते ? और तब तो संसारके अभावका ही प्रसंग आ जाता। भगवानकी वाणी योग्य जीवको तिरनेके लिए निमित्त है, और वह भी यदि स्वयं यथार्थ समझ ले तो निमित्त कहलाती है; अन्यथा वह निमित्त भी नहीं है।

यदि भगवान किसीको तार सकते होते तो अभी तक अनन्त भगवान हो गये हैं फिर भी आज तक किसीने तुझे क्यों नहीं तारा ? यह बात नहीं है—कि भगवानने नहीं तारा इसलिए तूं अभीतक संसारमें चक्कर लगा रहा है, किन्तु सच्ची बात तो यह है कि जैसा भगवानने कहा ऐसे स्वाश्रित स्वभावकी यथार्थ समझके बिना ही अभीतक यह जीव चक्कर लगा रहा है; तत्त्वकी एक भी बातमें उल्टा नहीं चल सकता। यदि एक भी बात उल्टी हो गई तो समस्त तत्त्व ही विपरीत हो जायगा। सत्‌को समस्त पहलुओंसे बराबर समझना चाहिये। त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरकी पैढ़ी पर बैठकर उनकी ओरसे बात करनी है कि भगवान ऐसे हैं। यह धर्मका राजमार्ग है, यह त्रिकालिक सनातन धर्मकी जाज्वल्यमान पैढ़ीका स्पष्ट मार्ग है। यह सनातन राजमार्ग अनादिकालसे एक ही प्रकार चला आ रहा है, उसमें कुछ अन्यथा नहीं चल सकता।

कोई कहता है कि भगवानकी मूर्ति तो जड़ है उसको क्यों पूजें ? उसके लिए कहते हैं कि अरे भाई ! अभी तू जड़ चेतनको समझ ही कहाँ पाया है ? जड़ क्या और चेतन क्या इसके स्वरूपको तू नहीं जानता। तेरे शरीर–लक्ष्मी स्त्रीका शरीर आदि भी जड़ ही हैं, फिर भी तू उन पर

तद्वत् गुण अंश कहा मुनीश !
जासे क्षय हों मम पाप इश !१०५।

क्यों राग करता है ? उसमें पाप बन्धता है, आत्मा स्त्री–पुत्रादि नहीं है और तू उनके आत्माको जानता भी नहीं है, केवल इस शरीरमें ही तू स्त्री–पुत्रादिपना मान बैठा है। अरे ! यह शरीर तो जड़ है, फिर भी तू उन पर अशुभराग क्यों करता है ? और जहाँ देवकी बात आती है वहाँ तू कहता है कि मूर्ति तो जड़ है , तब कहना होगा कि तुझे देव-गुरुकी पहिचान नहीं है, और न तू उनका भक्त ही है। ज्ञानके बलसे मूर्तिमें सर्वज्ञदेवकी स्थापना करके 'यह सर्वज्ञ ही है' ऐसा समझ कर धर्मी जीव उसका आदर-पूजन-भक्ति करता है, जिनप्रतिमा जिन सारखी कही गई है; 'कहत बनारसी अलप भव थिति जाकी; सोई जिनप्रतिमा प्रमानें जिनसारखी'।

विषय कषाय आदिकी अभिलाषासे रहित सच्चे देवादिमें यथार्थ प्रवृत्ति करनेसे गृहीत मिथ्यात्व छूटता है। तुम अपने परिणाममें यह विचार करो कि पहले कुदेवादिमें मेरी जो भक्ति थी, उससे भी अधिक भक्ति सच्चे देव-गुरु आदि पर (उन्हें पहचान कर, उनके प्रति) हुई है या नहीं ? यदि सच्चे देवादिके प्रति आंतरिक उत्साहसे पहलेसे अधिक भक्ति प्रकट नहीं हुई तो कहना होगा कि उसके देव-गुरुकी सच्ची प्रीति भी प्रकट नहीं हुई। यदि जिनेन्द्रदेवके प्रति आन्तरिक प्रीति प्रकट हुई होगी तो उसका कार्य भी बाहर दिखाई दिये बिना न रहेगा। यदि सच्चे देव, गुरु और धर्मके लिए तन, मन, धन खर्च करनेका उत्साह तेरे मनमें नहीं होता तो समझना चाहिए कि तेरा भविष्य ही खराब है। यदि तेरे अन्तरंगमें सच्चे देव-गुरु और धर्मकी भक्तिका प्रेम नहीं उमड़ता तो तू जो कुछ भी करता है वह मात्र लोगोंको दिखानेके लिए करता है। किन्तु भाई, तू सर्वज्ञके ज्ञानको तो घोखा नहीं दे सकेगा; यह हो सकता है कि तू कदाचित् संसारको धोखा देवे किन्तु सर्वज्ञदेवको धोखा नहीं दे सकता। कहनेका तात्पर्य यह है कि तू तेरे आन्तरिक भावोंसे भिन्न फल प्राप्त नहीं कर सकेगा। तेरे विपरीत भावोंका अनुकूल फल नहीं मिल सकता। सच तो यह है कि कोई दूसरेको धोखा दे ही नहीं सकता किन्तु अपने ही भावको धोखा देता है जो लोभादि कषायकी मंदता भी नहीं करता और मानता है कि मैं धर्म करता हूँ—वह खुद अपने आपको धोखा दे रहा है।

जो पहले कुदेवादिके लिए तन, मन, धनसे उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति करता था वह अब सच्चे देव-गुरुकी पहिचान होने पर उससे अधिक उत्साहसे तन, मन, धन, ज्ञान, काल और क्षेत्र इत्यादिको लगाये बिना नहीं रहेगा। यदि सत्यको समझ ले तो सत्का बहुमान हुए बिना रह ही नहीं सकता। यदि कोई सच्चे देव-गुरु और धर्मके लिए उत्साह पूर्वक तन, मन, धनका खर्च न करे और कहे कि हम सच्चे देव-गुरुको मानते हैं तो समझना चाहिए कि वह कपटी है, उसकी बात गलत है। वास्तवमें देव-गुरुकी महिमा उसने जानी ही नहीं।

प्रश्न—हमने पहलेसे ही कभी कुदेवादिमेंभी प्रीति नहीं की। कभी कुदेवादिके लिए भी

हमने कोई खर्च नहीं किया और अब सच्चे देव गुरुके लिए भी हम कोई खर्च नहीं करते, तब फिर हमारे परिणाममें कपट कैसे कहलायेगा ?

उत्तर—लड़का बिमार पड़ा हो तब कुदेवादिकी मान्यता करता है, अथवा औषधि उपचार करता है उसमें यदि कोई कहे कि दो-चार हजार रुपया अमुक दवाके लिए खर्च करने होंगे तो वहाँ किसी भी तरहकी आनाकानी किये बिना प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लेता है; क्योंकि पुत्रका प्रेम है; वहाँ तो रुपया खर्चते हुए भी पाप है। और जब यहाँ देव-गुरु-धर्मके प्रभावनादि कार्योंमें तन, मन, धन खर्च करनेकी बात आती है तब बहाने बनाता है कि हमारी शक्ति नहीं, हमारे दूसरे खर्च बहुत हो गये हैं। अथवा ऐसा कुतर्क करता है कि वीतरागको तो कुछ आवश्यकता ही नहीं है, शासनका पुण्य होगा तो शासनकी प्रभावना हो जायगी; किन्तु भैयाजी ! इस प्रकारकी झूठी बहानेबाझी वीतरागमार्गमें नहीं चल सकती। यह तो सच है कि वीतरागको धनादिकी कुछ आवश्यकता नहीं, किन्तु तू अपने रागको भी तो कम कर, तुझे तृष्णा कम करनेकी किसने मना की है। लोकव्यवहारमें शोभा और मान बढ़ाईके लिए लग्नादि प्रसंग पर उत्साहसे तन, मन, धन खर्च करते हो और यहाँ सर्वज्ञ वीतराग देव-गुरु-धर्मकी भक्ति, प्रभावना इत्यादिके लिये तन, मन, धन खर्च करनेका कोई उत्साह ही नहीं होता; तब कहना होगा कि तुम्हें वीतरागदेवकी श्रद्धा ही नहीं है। सिर्फ कहनेके जैनी हो।

प्रश्न—आरम्भ-परिग्रहके कार्योंका तो भगवानने निषेध किया है ?

उत्तर—व्यापार धन्धेमें या मकान बनानेमें, भोजनादिमें तुझे आरम्भ-परिग्रह नहीं दिखता और देव-गुरु-धर्मके प्रशस्त कार्योंको आरम्भ परिग्रह बताकर तू उसे टालना चाहता है, तुझे आरम्भ परिग्रहका भान ही कब है ? स्वरूपमेंसे निकलकर परभावमें प्रवृत्ति करना ही आरंभ-परिग्रह है। अपने स्वरूपकी विपरीत मान्यतासे रागादि परभावकी पकड़ वही परिग्रह है, और कषायादि विपरीत चारित्र है सो आरम्भ है; स्वरूपका भान हुए बिना आरम्भ-परिग्रहको कैसे रोकेगा ? आरम्भ-परिग्रह बाह्यमें नहीं किन्तु अपने भावमें है। संसारके प्रति जो अशुभ परिणाम है सो तो तीव्र आरम्भ-परिग्रह है, और देव-गुरुके प्रति जो शुभराग है उसमें अल्प आरम्भ-परिग्रह है। प्रथम भूमिकामें देव, गुरु, धर्मके प्रति शुभराग, भक्ति और बहुमान हुए बिना नहीं रह सकता।

वीतरागी देव-गुरु-धर्मके प्रति जो राग है वह प्रातःकालीन अरुणोदयके समान है, जिसके पीछे सूर्यका प्रकाश होगा। अर्थात् स्वभावके बलसे शुभरागको भी दूर करके वह केवलज्ञानरूपी सूर्यको प्रकट कर लेगा, और संसार सम्बन्धी लौकिक शुभराग (परजीवकी दया, दान, इत्यादिके भाव) है वह सायंकालकी संध्याके समान है, जिसके पीछे रात्रिका अन्धकार है, अर्थात् शुभरागको धर्म मानकर संतुष्ट होता है उसका शुभ भी पलटकर थोड़े ही समयमें अशुभ परिणाम हो जायगा, जिससे वह अशुभ गतियोंमें परिभ्रमण करेगा। (क्रमशः)*

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

❋ समाधि-वर्णन ❋

आत्माके स्वरूपमें एकता होना उसका नाम समाधि है। स्वभाव ज्ञायक है, उसमें लीनता होना वह मोक्षमार्ग है। अथवा सर्वथा अन्तर्मुख दृष्टि करके एकाग्र होना वह समाधि है। शरीरादिकी क्रिया जड़ है और पुण्य–पापके परिणाम तो विकार है, आत्मा शुद्धचैतन्य है, उसकी दृष्टिपूर्वक स्थिरता होना वह समाधि है।

आत्मानन्दके समक्ष इन्द्रादिकी सम्पदा रोग समान लगती है। धर्मीको इन्द्रके भोगका अनुभव भी दुःखरूप लगता है। आत्माकी प्रीतिमें इन्द्रके भोगकी वेदना आकुलता लगती है, वहाँ अनुकूलता नहीं लगती। आत्मा त्रिकाल ध्रुव शुद्ध निर्मलानन्द है, उसके आश्रयसे जो आनन्द प्रकट होता है उसमें पुण्य–पापकी रुचि तो नहीं है परन्तु उसके फलकी भी रुचि धर्मीको नहीं होती। आत्मा ज्ञायक है, उसकी रुचि होने पर स्वभावमेंसे आनन्द ही प्रवाहित होता है–द्रवित होता है। द्रव्य स्वयं द्रवता है–बहता है। जिसे पर्यायबुद्धि छूट गई है और द्रव्यबुद्धि हुई है वह सचमुच अपने स्वभावको द्रवता है, उसे यथार्थमें द्रव्य कहते हैं। विकारको द्रवे वह आत्मद्रव्य नहीं—ऐसा कहते हैं।

जैसे पानीका बर्फ होता है उसमेंसे पानी बहता है, उसीप्रकार द्रव्य स्वयं बहता है। वह परिणाममें परिणमता है। द्रव्यका लक्षण द्रवना है। आत्माको द्रव्य क्यों कहा है? आत्मा चिदानन्दस्वरूप द्रव्य है, वह वीतरागदशारूप द्रवित हो तो द्रव्य है। अखण्ड ज्ञायकस्वभाव है–ऐसे द्रवे–बहे तो द्रव्य कहा जाता है। यहाँ तो समाधिका वर्णन है। समाधि किसे कहा जाता है? कि आत्मद्रव्य स्वयं अपने वीतरागस्वभावको द्रवे तो द्रव्य कहा जाता है। पर्यायबुद्धि छोड़कर–शरीरादिकी बुद्धि छोड़कर, जिसे अखण्ड द्रव्यकी प्रतीति हुई उसका द्रव्य स्वभावको द्रवता है। इसके सिवा कहीं धर्म नहीं है। पैसेसे, शरीरसे तो धर्म नहीं है क्योंकि वे तो पर हैं, परन्तु आत्मामें दानादिके शुभपरिणाम हों उनसे भी धर्म नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि राग और परबुद्धि छोड़कर मैं तो शुद्ध ज्ञायकमूर्ति हूँ—उसकी दृष्टि करके

तब देव मनुज जग प्राणि सभी,
कर जोड़ नमन करते सुखधी।१०६।

पर्यायमें वीतरागभावरूप परिणमित हो वह द्रव्य है, क्योंकि द्रव्य अपनी शक्तिसे गुणको द्रवता है। द्रव्य और गुण दोनोंमें द्रवनेका लक्षण है। जैसा आनन्द सिद्धमें है वैसा आनन्द आत्मामें एक अंशमें भी प्रकट होना वह द्रव्य–गुणमें अभेद परिणाम होने पर होता है। ऐसी एकदेश साधकदशा प्रकट होने पर परिषहका वेदन उसे नहीं होता।

लोक धर्म.....धर्म पुकारते हैं; परन्तु धर्म कहाँ और किसप्रकार होता है उसकी खबर नहीं है। धर्म पर्वतमें, पैसेमें या शरीरकी क्रियामें अथवा आहारदानमें नहीं है। मन्द कषायके परिणाम करे तो उनमें भी मोक्षमार्गरूप धर्म नहीं है। आत्मा गुण द्वारा शक्तिमेंसे द्रवता है। जिसे आत्माकी रुचि प्रकट होकर सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र परिणति हुई उसे अनेक प्रकारके परिषह हों तब भी उनकी वेदना नहीं होती। जब आत्माका अनुभव है तब बाह्य वेदनाका अनुभव नहीं होता। आत्मा आनन्दकंद शुद्ध है; उसकी रमणता होनेसे चाहे जैसे परिषहके ढेर हों परन्तु उनका वेदन नहीं होता। जिसने चारित्रको कष्टरूप माना है, वह चारित्रके स्वरूपको नहीं समझता, वह अज्ञानी है, वह चारित्रको गाली देता है, अवर्णवाद करता है। देव–गुरु–शास्त्रका अवर्णवाद करता है वह दर्शनमोहनीय बाँधता है। जिसे चारित्रदशा प्रकट हुई हो उसे परिषहकी वेदना नहीं होती। आत्मा ज्ञायक चिदानन्द है, उसकी दृष्टिपूर्वक संवर–निर्जरा होती है। चारित्र आनन्दमय है, तथापि जो उसे कष्टरूप–दुःखरूप मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं। ज्ञानीको अन्तर्मुखदृष्टिपूर्वक जितनी पर्याय प्रकट हुई है उतनी शान्ति तो सदैव होती है। पाँचवें और छठवें गुणस्थानमें तो उसकी अपेक्षा अधिक शान्ति होती है। मुनिदशा कष्टरूप नहीं होती।

आत्मा अनाकुल अकषाय आनन्दरूप है, उसमें लीन होने पर मनके संकल्प–विकल्प टूट जाते हैं; बुद्धिपूर्वक उत्थान नहीं होता। वह आनन्दको धारण कर रहा है, यही स्वरूपधारणा है। अपना ज्ञान उपयोग रागादि–परकी ओर आकर्षित होता था—परमें एकाग्र होता था, उसके बदले अब चिदानन्द आत्मा जो कि अचल वस्तु है उसमें जितना उपयोगको लगाया उतना परका विस्मरण होता है उसका नाम धर्म एवं मोक्षमार्ग है। लोग बाह्यमें धर्म मान रहे हैं। ज्ञानज्योतिमें जितनी उपयोगकी लीनता हुई, स्वभावमें स्थिरता हुई उतनी परकी उपाधि कम होती जाती है, इसलिए निरुपाधिस्वभाव प्रकट होता है उसे समाधि कहते हैं।

(क्रमशः)✻

जिनकी मूरति है कनकमयी,
प्रसरी भामंडल रूपमयी;

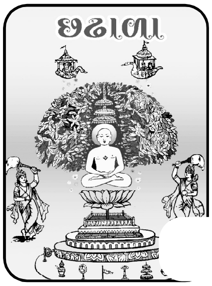

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(तीसरी ढाल, गाथा-३)

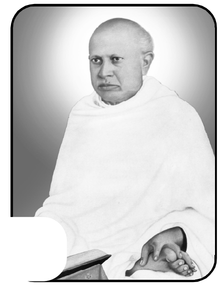

व्यवहार सम्यग्दर्शनका वर्णन

स्वयंके शुद्धात्माकी श्रद्धारूप निश्चय सम्यग्दर्शन जहाँ प्रकट हुआ वहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन कैसा होता है? उसे कहते है —

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं, दिढ़ प्रतीति उर आनो॥३॥

जिनवर भगवानने जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व जिस प्रकार कहे है उस अनुसार श्रद्धा करना वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सामान्यसे और विशेषसे वह सात तत्त्वोंका स्वरूप अब कहेंगे, तो उसे सुनकर अंतरमें उसकी दृढ़ प्रतीति करना।

दूसरी ढालमें, मिथ्यादृष्टिजीव सात तत्त्वकी श्रद्धा कैसी करता है उसे बताते है। और उसे टालनेका उपदेश दिया है; यहाँ तीसरी ढालमें, सम्यग्दर्शन होने पर सात तत्त्वकी श्रद्धा कैसी हुई वह बतलाते है। अरिहंत परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसी मतमें सात तत्त्वका यथार्थ स्वरूप होता नहीं है, अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि जीव अरिहंत भगवानके वीतरागी मार्गके अतिरिक्त अन्य किसी भी कुमार्गकी श्रद्धा स्वप्नमें भी करता नहीं है। यह बात तो कुदेवका सेवन छोड़नेके उपदेशमें आ गई है। यहाँ तो आत्माका भान करके जो जीव सम्यग्दृष्टि हुआ उसे व्यवहारमें भी तत्त्वोंकी श्रद्धा कैसी होती है–उसका वर्णन है।

नव तत्त्वकी श्रद्धा तब यथार्थ हुई कि जब परद्रव्यसे भिन्न और रागादि आस्रवोंसे भिन्न स्वयंके शुद्धात्माकी रुचि करके निश्चय सम्यग्दर्शन प्रकट किया; तभी भूतार्थसे नव तत्त्वोंको पहिचाना कहा जायेगा। ऐसे सम्यग्दर्शनसे धर्मका प्रारम्भ होता है। निश्चय

वाणी जिनकी सत्-तत्त्वकथक,
स्यातपदपूर्वे यतिगणरंजक ।१०७।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह शुद्ध परिणति है, वह संवर-निर्जरा है, और व्यवहार सम्यग्दर्शनादिमें शुभराग है, वह आस्रव है। अंतर-अनुभव सहित ज्ञायक आत्माकी प्रतीतिरूप जो शुद्ध परिणति हुई वह तो सिद्धदशामें भी रहती है; उसका प्रारम्भ चौथे गुणस्थानसे हो जाता है। ऐसे सम्यग्दर्शनके साथ नव तत्त्वकी विपरीतता हो सकती नहीं है। वह पुण्य-आस्रवको संवर-निर्जरा और मोक्षका कारण मानता नहीं है; वह अजीवतत्त्वके भावोंको जीवमें मानता नहीं है। सभी तत्त्वोंको जैसा है वैसा जाने।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्वों सर्वज्ञ भगवानने देखे हैं और जिनवाणीमें उसका उपदेश है।

❊ जीवतत्त्व ❊

जगतमें जीव अनंत है। स्वभावसे सभी जीव भिन्न-भिन्न एक समान है। लेकिन अवस्था अपेक्षासे जीवोंके तीन प्रकार हैं—बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। बाह्य शरीरको ही आत्मा माननेवाला जीव बहिरात्मा है, ऐसे जीव अनंता है। अंतरमें देहसे भिन्न आत्माको जाननेवाले जीव वह अंतरात्मा है, उसके अनेक प्रकार है; ऐसे अंतरात्मा जीवों असंख्यात है। सर्वज्ञ परमपदको प्राप्त जीव वह परमात्मा है;—उसके दो प्रकार–अरिहंत और सिद्ध; सिद्ध परमात्मा अनंत है, अरिहंत परमात्मा लाखों विराजते हैं। ऐसे भेद सहित जीवतत्त्व वह व्यवहार-सम्यग्दर्शनका विषय है। निश्चय सम्यग्दर्शनमें स्वयंके शुद्धजीवकी निर्विकल्प प्रतीत है, उसमें कोई भेद नहीं है। भेदको जानते समय भी समकिती जीव मात्र भेदमें ही नहीं ठहरता है, अभेद शुद्धआत्माको लक्षमें रखकर भेदको जानता है। केवलज्ञान पर्याय आदि पर्याय होनेका सामर्थ्य शुद्धात्मामें विद्यमान है, इसलिये शुद्धात्माकी प्रतीतिमें यह सब कुछ समाहित हो जाता है। शुद्धात्माकी प्रतीतिमें परमात्माकी प्रतीत समाहित हो गयी है। आत्माके शुद्ध स्वभावको अनुभवमें लिया वहाँ अरिहंत भगवान और सिद्ध भगवानको पहिचान लिया।

❊ अजीव तत्त्व ❊

अजीवके मुख्य पांच प्रकार–पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। उसमें पुद्गल परमाणुएँ अनंत हैं; यह शरीर आदि जो कोई भी पदार्थ इन्द्रियगम्य है, वे सभी अजीव पुद्गलकी रचना है, वह जीवकी रचना नहीं है। अन्य चार अजीवतत्त्वों सूक्ष्म-अरूपी है। यह जीवतत्त्व और अजीवतत्त्वको भिन्न-भिन्न जानना; अजीवके किसी प्रकारोंमें

जिन आगे होई गलित माना,
अेकान्ती तजें वाद थाना;

जीवका मिलान नहीं करना, और जीवके किसी प्रकारको अजीवके साथ मिलान नहीं करना। ज्ञान वह जीवका गुण है, वह इन्द्रियगुण नहीं है। जड़इन्द्रियसे ज्ञान होता नहीं है। इतना तो व्यवहारश्रद्धामें आ जाता है। इसमें भी जिसे विपरीतता हो उसे तो व्यवहार तत्त्वश्रद्धा भी यथार्थ होती नहीं है। जीव-अजीव आदि तत्त्वों भिन्न-भिन्न जैसे है वैसे जाने बिना वीतरागविज्ञान होता नहीं है और मोक्षमार्ग हाथमें आता नहीं है। अरे ! मात्र व्यवहार तत्त्वके प्रकारोंको जाने तदपि मोक्षमार्ग हाथमें आता नहीं है। शुद्धनय द्वारा अंतरमें अपने अखंड चैतन्यरूप शुद्धात्माको स्वविषय बनाये बिना, परविषयोंका ज्ञान यथार्थ होता नहीं है अर्थात् कि यथार्थ व्यवहार होता नहीं है। स्वके ज्ञान बिना परके ज्ञानको व्यवहार भी कहते नहीं है। मोक्षमार्गमें निश्चयसहितके व्यवहारकी बात है अर्थात् स्वका ज्ञान साथमें रखकर परके ज्ञानकी बात है। स्वको जाने बिना मात्र परको जानने जाता है तो परमें एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्व हो जाता है, क्योंकि स्वयंका परसे भिन्न अस्तित्व है वह तो ज्ञानमें या प्रतीतमें आता नहीं है।

❊ आस्रव तथा बंध तत्त्व ❊

मिथ्यात्वादि भावोंसे कर्मोंका आस्रव तथा बंध होता है; पाप और पुण्य वह भी आस्रव तथा बंधमें समाहित होता है। पुण्य-पाप आदि आस्रव है उसे आस्रवरूप जानना, लेकिन उसे संवरमें मत मिलाना, वह तो आस्रव तत्त्वकी श्रद्धा है। आस्रवका किसी भी प्रकारसे जीवको हितरूप नहीं है कि वह मोक्षका कारण नहीं है ऐसा जानना चाहिये। यदि किसी प्रकारके आस्रवको हितरूप माने तो उस जीवको आस्रव तत्त्वकी यथार्थ श्रद्धान नहीं है। अशुभ या शुभ ये दोनों प्रकारके बंधन छोड़ने जैसे है, उसमेंसे एक भी हितकर नहीं है। शुभराग भी जीवको बंधनका ही साधन है, वह कोई मोक्षका साधन नहीं है। नव तत्त्वकी यथार्थ पहिचान करे उसे पुण्यकी मीठाश रहती नहीं है; पुण्यको भी छोड़ने योग्य समझ।

❊ संवर तत्त्व ❊

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभावसे कर्मोंका संवर होता है। आत्माकी शुद्धता होने पर अशुद्धता और कर्मों रुक जाते हैं। किस भूमिकामें कितने अंशमें संवर होता है, वहाँ कैसे निमित्त होते है और कैसे निमित्त छूट जाते है उसे पहिचानना चाहिये; उसमें विपरीतता नहीं होनी चाहिये जैसे मुनिदशामें वीतरागीभावसे इतना अधिक संवर हो गया है कि वहाँ वस्त्रके परिग्रहकी वृत्ति जितना आस्रवभाव होता नहीं है, और निमित्तरूप

(शेष देखे पृष्ठ २७ पर)

विकसित सुवरण अम्बुज दलसे,
भू भी हंसती प्रभुपद तलसे।१०८।

धन्य वह मुनिवरा !

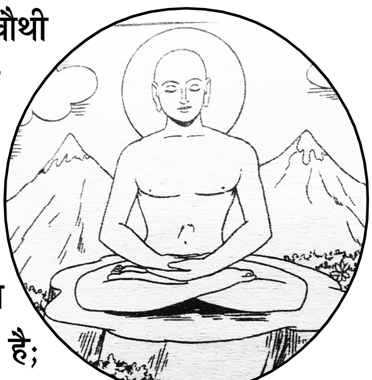

आत्माके गुणकी चौदह भूमिकाएँ हैं। उसमें चौथी भूमिकामें अपूर्व आत्मसाक्षात्कार, निर्विकल्प अनुभव होता है, उसी समय यथार्थ स्वरूपका ज्ञान होता है। पश्चात् आंशिक स्थिरताकी वृद्धि हो वह पाँचवीं भूमिका है। अंतरज्ञानमें विशेष स्थिर होकर, कषायकी तीन चौकड़ीका अभाव करके, निर्विकल्प ध्यान दशा प्रकट हो उसे अप्रमत्त नामकी सातवीं भूमिका कहते है; बादमें सविकल्पदशा आती है उसे छठवाँ गुणस्थान कहते है। मुनि यह दो दशाके बीचमें बारम्बार झूलते रहते हैं।

निर्विकल्पदशामें जो विशेष काल स्थिर रहे तो मुनि अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त करता है। ऐसा हो तब तक हजारों बार छठवीं-सातवीं भूमिका बदलती रहती है। तीनों काल मुनिदशा ऐसी ही होती है। वह मुनिदशा बाह्य और अभ्यंतर परिग्रहसे रहित होती है, आत्मज्ञान सहित नग्न दिगम्बरपना होता है। सातवें गुणस्थानमें बुद्धिपूर्वक विकल्प छूट जाते है और आत्मस्वरूपकी स्थिरतामें बिलकुल निर्विकल्प आनंदमें लीन हो जाता है, वहाँ प्रतिक्षण साक्षात् सिद्ध परमात्माके समान आनंदका अंश अनुभवमें आता है। 'मैं आत्मा हूँ, शुद्ध आनंदस्वरूप हूँ' सिर्फ ऐसे विकल्प भी वहाँ होते नहीं है, मात्र स्वसंवेदन होता है।—ऐसी स्थिति-साधकदशा भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवकी थी, क्षणमें प्रमत्त और क्षणमें अप्रमत्तदशामें वे झूलते थे।

आचार्यदेवको केवलज्ञान प्रकट होनेमें संज्वलन कषायका अंश जीतना बाकी रहा है। क्षणमें छठवीं भूमिकामें आते आत्मस्वभावकी बात करते है, और क्षणमें वे शुभ विकल्प तूटकर सातवीं भूमिकामें मात्र अतीन्द्रिय आनंदमें ठहरते है, ऐसी वह उत्कृष्टदशा है; वह उनका निज वैभव है। उस निज वैभवसे वे आत्माका वास्तविक स्वरूप जगतको कहते है कि ज्ञायक नित्य एकरूप चैतन्यज्योति है, वह वर्तमान क्षणिक अवस्थाके कोई भेदरूप नहीं लेकिन केवल ज्ञायकरूप शुद्ध है, अखंड एकाकार ज्ञायकस्वभावमें अप्रमत्त-प्रमत्तके भेद परमार्थसे होता नहीं है।

–समयसार प्रवचन-१, पृ. १५७-५८

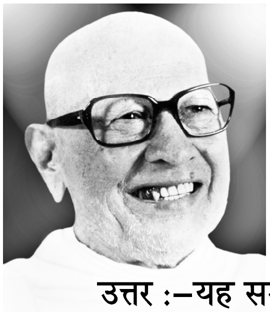

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–सम्यग्दर्शन और आत्मा भेदरूप है या अभेदरूप है?

उत्तर :–यह सम्यग्दर्शनादि निर्मलपर्याय और आत्मा अभेद हैं। रागको और आत्माको तो स्वभाव-भेद है, किन्तु यह सम्यग्दर्शन और शुद्धात्मा अभेद हैं। परिणति स्वभावमें अभेद होकर परिणमित हुई है, आत्मा स्वयं अभेदपने उस परिणतिरूपसे परिणमित हुआ है–उसमें भेद नहीं है। व्यवहार सम्यग्दर्शन तो विकल्परूप है, वह कहीं आत्माके साथ अभेद नहीं।

प्रश्न :–दृष्टिके विषयमें वर्तमान पर्याय शामिल है या नहीं?

उत्तर :–दृष्टिके विषयमें मात्र ध्रुवद्रव्य ही आता है। पर्याय तो द्रव्यको विषय करती है, परन्तु वह पर्याय ध्रुव द्रव्यमें शामिल नहीं होती, क्योंकि वह विषय करनेवाली है। विषय और विषयी भिन्न-भिन्न हैं।

प्रश्न :–द्रव्यदृष्टिमें किसका आलम्बन होता है?

उत्तर :–द्रव्यदृष्टि शुद्ध अन्तःतत्त्वका ही अवलम्बन लेती है। निमित्त पर्याय भी बहिर्तत्त्व है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व है, उसका आलम्बन द्रव्यदृष्टिमें नहीं है। संवर-निर्जरा-मोक्ष भी पर्याय है, अतः वह भी विनाशिक होनेसे बहिर्तत्त्व है, उसका भी आलम्बन द्रव्यदृष्टिमें नहीं है। शरीर-मन-वाणी, कुटुम्ब अथवा देव-शास्त्र-गुरु—ये तो परद्रव्य होनेसे बहिर्तत्त्व हैं ही और दया-दान-व्रत-तपादिके परिणाम भी विकार होनेसे बहिर्तत्त्व ही हैं; परन्तु यहाँ तो जो शुद्ध निर्मल पर्यायरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके परिणाम हैं, वे भी क्षणिक अनित्य और एक समयमात्र टिकते होनेसे, ध्रुवतत्त्व अन्तःतत्त्वकी अपेक्षासे बहिर्तत्त्व ही हैं। अतः उनका भी आलम्बन लेने योग्य नहीं है।

प्रश्न :–सम्यग्दर्शनका विषय क्या है?

उत्तर :–समयसारकी १३वीं गाथामें कहा है कि नव तत्त्वरूप पर्यायोंमें अन्वयरूपसे विद्यमान भूतार्थ एकरूप सामान्य ध्रुव वह सम्यग्दर्शनका विषय है। पंचाध्यायी (अध्याय २)में भी कहा है कि भेदरूप नव तत्त्वोंमें सामान्यरूपसे विद्यमान अर्थात् ध्रुवरूपसे विद्यमान वह चीजका शुद्ध भूतार्थस्वरूप है। इसप्रकार भेदरूप नव तत्त्वोंसे भिन्न शुद्ध जीवको बतलाकर उसे सम्यग्दर्शनका विषय अर्थात् ध्येयरूप बतलाया है।

जीवकी श्रद्धापर्याय ध्येयभूत सामान्य ध्रुव द्रव्यस्वभावकी ओर झुकती है तभी सम्यग्दर्शन एवं निर्विकल्प स्वानुभव होता है। उस समय दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि सर्व गुणोंके परिणाम (पर्याय) स्वभावकी ओर झुकते हैं; मात्र श्रद्धा-ज्ञानके ही परिणाम झुकते हैं ऐसा नहीं है। ''..... वहाँ सर्व परिणाम उस रूपमें एकाग्र होकर प्रवर्तते हैं.....'' (पं. टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठी)

प्रश्न :–ध्रुव स्वभावके साथ निर्मल पर्यायको अभेद करके दृष्टिका विषय माननेमें क्या आपत्ति है ?

उत्तर :–ध्रुव द्रव्यस्वभावके साथ निर्मल पर्यायको एकमेक करनेसे दृष्टिका विषय होता है—ऐसा माननेवाले व्यवहारसे निश्चय होना माननेवालोंकी भांति ही मिथ्यादृष्टि है; उनका जोर पर्याय पर है, ध्रुव स्वभाव पर नहीं है।

सम्यग्दर्शनके विषयमें द्रव्यके साथ उत्पादरूप निर्मल पर्यायको साथ लेनेसे वह निश्चयनयका विषय न रहकर प्रमाणका विषय हो जाता है, और प्रमाण स्वयं सद्भूत व्यवहारनयका विषय है। निश्चयनयका विषय अभेद एकरूप द्रव्य है, प्रमाणकी भांति उभय अंशग्राही नहीं है। यदि पर्यायको द्रव्यके साथ एकमेक किया जाये तो निश्चयनयका विषय जो त्रिकाली सामान्य है वह नहीं रहता, परन्तु प्रमाणका विषय हो जानेसे दृष्टिमें भूल है, विपरीतता है।

अनित्यको नित्य जानता है; पर्याय द्रव्यको जानती है; पर्यायरूप व्यवहारनिश्चयरूप ध्रुवद्रव्यको जानता है; भेद अभेद द्रव्यको जानता है; पर्याय जाननेवाली अर्थात् विषयी है और त्रिकाली ध्रुव द्रव्य जाननेवाली पर्यायका विषय है। यदि द्रव्यके साथ निर्मल पर्यायको मिलाकर निश्चयनयका विषय कहा जाये तो विषय करनेवाली पर्याय तो कोई भिन्न नहीं रही। अत: पर्यायको विषयकर्ताके रूपमें द्रव्यसे भिन्न लिया जाये तभी विषय-विषयी दो भाव सिद्ध हो सकते हैं; इससे अन्यथा माननेसे महाविपरीतता होती है।

श्रुतज्ञानकी पर्याय वह प्रमाणज्ञान है। प्रमाणज्ञान स्वयं पर्याय होनेसे व्यवहार है। वीतरागी पर्याय स्वयं व्यवहार है; परन्तु उसने त्रिकाली द्रव्यरूप निश्चयका आश्रय लिया होनेसे उस निर्मल पर्यायको निश्चयनय कहा है; परन्तु वह पर्याय होनेसे व्यवहार ही है। शास्त्रका तात्पर्य वीतरागता है। परका लक्ष छोड़कर, रागका लक्ष छोड़कर, पर्यायका लक्ष छोड़कर, त्रिकाली द्रव्यका लक्ष करे तब वीतरागता प्रकट होती है। यदि त्रिकाली द्रव्यरूप पर्यायको साथ ले तो वह बात नहीं रहती। (क्रमश:) *

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *शास्त्रभाषामें कहा जाता है कि पर्याय प्रकट करनेकी अपेक्षासे उपादेय है; परन्तु आपने जो कहा उससे बहुत अच्छी तरह स्पष्टीकरण हुआ है। साधनामें साधकको ऐसे परिणाम आते हैं, यह बात आपने बहुत अच्छी बतलायी। इसे विशेष समझायें।*

समाधान :—साधनामें ऐसे परिणाम साथ होते ही हैं। उसकी दृष्टि ज्ञायकपर स्थापित रहती है; दृष्टि ज्ञायकसे हटती नहीं है।'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसे ज्ञायकका जो अस्तित्व ग्रहण किया है; विभावसे न्यारा, अपूर्ण या पूर्ण पर्याय जितना भी मैं नहीं तथा गुणके भेद भी मुझमें नहीं;—ऐसी जो दृष्टि ज्ञायकपर स्थापित हुई वह दृष्टि वहाँसे खिसकती ही नहीं है। तथापि उसे ज्ञानमें है कि—यह विभाव खड़ा है, पर्याय अभी अपूर्ण है, स्वभावका वेदन अंशतः होता है, स्वानुभूतिकी दशा प्रकट हुई है, ज्ञायककी सविकल्पधारामें अंशतः शान्तिका वेदन होता है परंतु अभी वह पूर्ण नहीं, अपूर्ण है; विकल्प और विभावका समूह अभी मौजूद है ऐसा वह जानता है और उस विभावसे अपनी परिणतिको पृथक् करता हुआ पुरुषार्थ करता रहता है। दृष्टिके साथ विभावसे छूटनेके पुरुषार्थकी डोर अपने साथ ही साथ रखता है। विभावमें एकत्व नहीं होता और उसकी जितनी उग्रता होती है तदनुसार पुरुषार्थ करता जाता है।

इसप्रकार पुरुषार्थ करते–करते उसकी भूमिका बदल जाती है। चौथी भूमिकाके पश्चात् पाँचवीं, फिर छठवीं–सातवीं भूमिकामें वह अपने स्वभावकी डोर ज्यादा खींचते रहनेसे ज्ञानकी उग्रता, ज्ञाताधाराकी तीक्ष्णता एवं विरक्ति बढ़ती जाती है। स्वभावकी निर्मलता विशेष होती रहती है और स्वानुभूतिकी दशा बढ़ती जाती है। उसकी दृष्टि बराबर बनी हुई है और पुरुषार्थकी डोर भी साथ ही साथ चल रही है।

प्रश्न :— *ज्ञानका फल विरति है तो मुमुक्षुकी भूमिकामें विभावसे अल्प अंशमें रहित तो होना चाहिये न?*

जिन-चंद्र वचन किरणे चमकैं,
चहुं ओर शिष्य यतिग्रह दमकैं;

समाधान :—यथार्थ ज्ञान प्रकट हो, ज्ञायककी धारा प्रकट हो उसका फल विरति है, इसलिये जिसे ज्ञायककी धारा प्रकट हो उसे विरक्ति आ जाती है, वह विभावसे भिन्न हो जाता है, अनन्तानुबंधी कषायें टूटकर अंशतः स्वरूपरमणता प्रकट होती है। ज्ञानका फल विरति है। अतः ज्ञायककी धारा प्रकट होती है, उसमें उसे अमुक अंशमें विभाव छूट जाते हैं। मुमुक्षु भूमिकामें जहाँ जिज्ञासा प्रकट हुई वहाँ वह विचार–पठन करे उसके साथ उसे अमुक वैराग्यादि होते ही हैं; नहीं तो उतनी रुचि ही नहीं है। आत्माके प्रति रुचि जाये और विभावका रस न छूटे तो उसे तत्त्वकी रुचि ही नहीं। विभावका रस छूटना ही चाहिये। ज्ञायककी धारा प्रकट हो, वह यथार्थ विरति है। जिज्ञासुको अभ्यासकालमें आत्माकी रुचि जगे उसे विभावका रस छूटना ही चाहिये। वह तत्त्वविचार करे, स्वाध्याय करे परंतु अंतरसे इतना वैराग्य न आये तो यथार्थ रुचि ही नहीं है। रुचिके साथ ही उसे अल्प विरक्ति और अंतरसे विभावका रस छूट जाना चाहिये।

प्रश्न :—श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है कि—''सर्वभावसे विरामकी प्राप्तिरूप संयम वह द्रव्यानुयोग परिणमित होनेका मूल है, यह किसी भी कालमें भूलना नहीं।'' वहाँ क्या तात्पर्य है ?

समाधान :—जिसको द्रव्यानुयोगका यथार्थ परिणमन हो गया है उसे संयम अनुक्रमसे आ ही जाता है। उसको स्वरूपरमणता होकर चारित्र प्रकट होता है। मुमुक्षुदशामें उसे अमुक प्रकारसे बाह्य रुचि छूट जाती है, वैराग्य आ जाता है।

प्रश्न :—अर्पणता किसे कहते हैं ?

समाधान :—अर्पणतामें सब आग्रह छूट जाने चाहिये। आग्रहोंकी पकड़ ढीली हो जाय तब अर्पणता हो। अर्पणतामें सब आग्रह कि—मैं कुछ जानता हूँ वह सब छूट जाना चाहिये। किसी प्रकारकी पकड़ नहीं रहनी चाहिये।

प्रश्न :—निर्णय तो करते हैं, किन्तु कभी–कभी वह निर्णय छूट जाता है उसका क्या कारण है ?

समाधान :—रुचि नहीं हो तो निर्णय होकर छूट जाता है। रुचि प्रबल हो तो निर्णय ज्यों का त्यों स्थिर रखे और उसका निर्णय आगे बढ़कर कार्य करे कि यह मैं हूँ, यह मैं नहीं। इसप्रकार रुचि हो तो उसका निर्णय दृढ़तापूर्वक कार्य किया करे। ऐसा उसे प्रथम अभ्यासरूप होता है। वह अभी यथार्थ नहीं है, परन्तु उसका अभ्यास करते–करते यथार्थ होनेका अवकाश है। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ८ का शेष भाग) (प्रवचनसार प्रवचन)

(४) स्वयंके ज्ञानस्वभावके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाला अतीन्द्रिय सुख आगामी बंधका कारण नहीं है इसलिये अनंतकाल तक सुखस्वरूप है। ऐसे ज्ञानस्वभावकी रुचि नहीं करते पुण्यकी रुचि करनेसे उत्पन्न होनेवाला इन्द्रियसुख बंधका कारण है। परपदार्थोंमें सुखबुद्धि करके हास्य, रति आदि अनेक प्रकारके भाव जीव करता है इसलिये अधिक कर्मोंका बंध करता है और संसारकी वृद्धि करता रहता है।

(५) ज्ञानस्वभावके आश्रयसे उत्पन्न होनेवाला अतीन्द्रिय सुख स्थिर, हानि-वृद्धि बिनाका धारावाही है। ऐसे ज्ञानस्वभावकी रुचि नहीं करता है और पुण्यकी रुचिसे उत्पन्न होनेवाला इन्द्रियसुख क्षणमें बढ़ता है और क्षणमें घट जाता है, धारावाही रहता नहीं है। इस प्रकार इन्द्रियसुख दुःख ही है इसलिये पुण्य भी पापकी भांति दुःखका ही साधन है।

(क्रमशः)✻

(पृष्ठ १३ का शेष भाग) (अध्यात्म संदेश)

आगम आदि पूर्वक (-बादमें वह विचार छूटके) स्वानुभव होता है। विचारके समयमें जो मति-श्रुतज्ञान था वही मति-श्रुतज्ञान विकल्प छूटके स्वानुभवमें आया, अतः स्वानुभवमें मति-श्रुतज्ञान है ऐसा यहाँ दिखाना है। मति-श्रुतज्ञानने आत्माका जो स्वरूप जाना उसमें ही वह मग्न होता है; इसमें जानपनेकी अपेक्षासे फर्क नहीं है परन्तु परिणामकी मग्नताकी अपेक्षासे फर्क है। मति-श्रुतज्ञानका उपयोग अंतर्मुख होकर जब स्वानुभव करता है तब उस निर्विकल्पदशामें कोई अपूर्व आनन्दका अनुभव होता है। जानपनेकी अपेक्षा भले वहाँ विशेषता न हो किन्तु आनन्दके अनुभव आदिकी अपेक्षासे उसमें जो विशेषता है, वह अब प्रश्न-उत्तरके द्वारा दर्शाते हैं। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ २१ का शेष भाग) (छहढाला प्रवचन)

वस्त्रग्रहणादि होता नहीं है। उससे विपरीत माने उसे मुनिके संवरकी पहिचान नहीं है, संवरदशावाले मुनिको उसने पहिचाना नहीं है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन हुआ वहाँ मांसाहारादि जैसी पापवृत्ति होती ही नहीं है अर्थात् उसे पापास्रव भी वहाँ होता ही नहीं है–ऐसी संवरदशा वहाँ होती है। (क्रमशः) ✻

निज आत्मतीर्थ अति पावन है,
भवसागर-जन इक तारन है।१०९।

श्री बृहद् मुंबई दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा आयोजित

स्वात्मानुभवी भगवती माता पूज्य बहिनश्रीका ११२वाँ मंगल जन्मोत्सव हर्षोल्लास सह सानंद संपन्न

हमारे परम तारणहार पूज्य गुरुदेवश्री एवं भगवती माता पूज्य बहिनश्रीके अध्यात्म-साधनातीर्थ सुवर्णपुरीमें श्री बृहद् मुंबई दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा आयोजित भगवती पूज्य बहिनश्रीका ११२वाँ महामंगलकारी जन्मोत्सव ता. ७-८-२०२५ गुरुवार से ११-८-२०२५, सोमवार तक अत्यंत हर्षोल्लास सह मनाया गया। डोम बहिनश्रीकी महिमासूचक बेनरोसे विशेषरूपसे शोभायमान था। उत्सवके प्रथम दिन सुवर्णपुरी प्रातः पूज्य गुरुदेवश्रीके मांगलिक और 'तू परमात्मा है'की वाणीसे गूंज उठी और धर्ममाता पूज्य बहिनश्रीकी विडियो तत्त्वचर्चासे महोत्सवका शुभारंभ हुआ।

उत्सवका दैनिक कार्यक्रम

जन्मजयंती उत्सवमें श्री सुवर्णपुरी विधान पूजाका आयोजन स्वाध्यायमंदिरके आगेके भागमें पूजन मंडपमें किया गया था। जिसमें सुवर्णपुरीके सभी मंदिरोंकी प्रतिकृतियाँ रखी गई थी जो मनमोहक प्रतीत होती थी। विधि विधान अध्यक्ष श्री विदेहीनाथ सीमंधर भगवान और सह विधि अध्यक्षके रूपमें श्री महावीर भगवान और धातुकीखंडके भावी तीर्थंकरको विराजमान किया गया था। प्रत्येक पूजाकी जयमालामें मंदिर सम्बन्धी इतिहासका वर्णन किया गया है। आयोजक द्वारा मुमुक्षुओंके लिये पूजन हेतु सुंदर व्यवस्था की गई थी।

महोत्सवके दिनोंमें दैनिक कार्यक्रममें प्रात ६.०० से ६.२० पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा, ७.४५ से ८-४५ श्री सुवर्णपुरी विधान पूजा, ९.०० से १०.०० पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री समयसार पर सीडी प्रवचन तत्पश्चात् प्रासंगिक घोषणाएँ, पूज्य बहिनश्रीकी भक्ति, १०.३० से ११.३० धार्मिक शिक्षण वर्गकी तीन कक्षाएँ, दोपहरमें नियमसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन, ४.०० से ४.३० श्री जिनेन्द्र भक्ति पश्चात् ४-३० से ५-१५ धार्मिक शिक्षणवर्ग तीन कक्षाएँ, संध्याको ६.४५ से ७.३० विविध मंडलों द्वारा सांजी भक्ति, ७-४५ से ८-४५ बहिनश्रीके वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन तत्पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रम—इस प्रकार कार्यक्रम सुचारुरूपसे चलते थे।

इस महोत्सवमें रात्रिको दर्शाये गये सांस्कृतिक कार्यक्रममें प्रथम दिन ब्रह्मचारी बहिनों द्वारा पूज्य बहिनश्रीका गुणानुवाद, दूसरे दिन पूज्य बहिनश्रीकी जीवनगाथाका ब्रह्मचारी कोकिलाबेन द्वारा भाववाही वर्णन किया गया। तीसरे दिन प्रथम पाठशालाके बालकों द्वारा अति सुंदर मंगलाचरण प्रस्तुत किया गया। पश्चात् मलाड मंडल द्वारा 'सोनानो गढ ते मारो सोनगढ' नाटिकाको नवीन संकल्पनाके साथ प्रस्तुत किया गया। चौथे दिन आध्यात्मिक नाटक रहस्यपूर्ण चिठ्ठी आध्यात्मिक संवाद सह सुंदर वेषभूषा, आधुनिक लाईटींग और साउन्ड इफेक्ट देकर अति ही भव्यतासे प्रस्तुत किया गया था।

भव्य रथयात्रा

महोत्सवके चौथे दिन सुबह प्रवचनके पश्चात् दादर दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा ''पूज्य बहिनश्रीकी अमृतवाणी भाग-३**A**'' अक्षरशः तत्त्वचर्चाका विमोचन ट्रस्टीगण एवं दादर मंडलके श्रेष्ठीओंकी उपस्थितिमें हुआ था। दोपहर प्रवचन पश्चात् श्री धातुकी विदेही भावी भगवानकी रथयात्राका आयोजन किया गया था। भगवानके मंगलरथके साथ विविध बगी और पारणाझुलनका फ्लोट भी शामिल था। इस रथयात्रामें सभी मुमुक्षु भाईओं और बहिनें भक्तिरसमें तन्मय होकर भाववाही भजन गाते थे।

जन्म महोत्सव श्रावण वद-२ का अभूतपूर्व कार्यक्रम

उत्सवके मुख्य दिन प्रातः देव-शास्त्र-गुरु दर्शन पश्चात् पूज्य बहिनश्री ब्रह्मचारी बहिनों के साथ स्टेज तक पधारी थी। पश्चात् कहान एक्सप्रेस द्वारा पूज्य बहिनश्री जन्मधाम वढ़वाण पधारी थी उस फिल्मके कुछ अंश दिखाये गये थे, रास्तेमें बोटाद, लींबडी और वढवाणके मुमुक्षुओं द्वारा बहिनश्रीका स्वागत किया गया था पश्चात् जन्मधाम वढ़वाणमें बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा हुई थी। सुवर्णपुरी विधान समापन, गुरुदेवश्रीका कल्याणकारी सीडी प्रवचन बादमें विविध प्रासंगिक उद्घोषणाएँ हुई और आगामी उत्सवोंका आमंत्रण पश्चात् पूज्य बहिनश्री प्रतिकृतिको 'गुरु पंथिनी' मोटरमें भक्तिपूर्वक नृत्य करते हुए स्टेज पर लाया गया। इस प्रसंग पर भजनमंडली द्वारा स्वागत गीत एवं भक्तिकी धून मचा दी थी। इस प्रसंग पर मुमुक्षुगण बहिनश्रीके आगमन पर चामर नृत्य द्वारा अपनी भक्ति कर रहे थे। बादमें आयोजक मंडल द्वारा सुंदर भक्ति स्वागत गान हुआ था बादमें पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा पश्चात् बहिनश्रीकी बधाईका कार्यक्रम हुआ था जिसमें मुमुक्षुओंने हर्षोल्लास सह बहिनश्रीकी बधाई की थी। इस प्रसंग पर मुमुक्षुका उत्साह अतीव था।

महोत्सव मनानेका आयोजक श्री बृहद् मुंबई दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडलका उत्साह और आयोजन प्रशंसनीय था। आयोजक द्वारा मुमुक्षुके लिये आवास एवं भोजनकी सुंदर व्यवस्था की गई थी।

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

दिये गये विकल्पमेंसे सही विकल्प पसंद करके रिक्त स्थानकी पूर्ति कीजिये।

(१) तीर्थंकर भगवानके ४६ गुणोंमेंसे महिमावंत .... है।
(३४ अतिशय, अनंतचतुष्टय, ८ प्रातिहार्य)

(२) छहों द्रव्योंकी गुण-पर्यायोंकी मर्यादाकी स्वतंत्रता .... गुणके कारण जाननेमें आती है। (द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व)

(३) प्रश्नके निमित्तसे एक ही वस्तुमें प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे अविरुद्ध विधि और प्रतिषेधकी कल्पना वह .... है। (४७ नय, सात तत्त्व, सप्तभंगी)

(४) सभी औदयिक भाव .... स्वरूप होते हैं। (स्वभाव, विभाव, स्वभाव-विभाव)

(५) सम्यक् एकांतको .... कहा जाता है। (निक्षेप, नय, प्रमाण)

(६) धर्मका प्रारंभ .... भावसे होता है। (औपशमिक, क्षायिक, पारिणामिक)

(७) .... शास्त्रके प्रथम श्लोकमें ही अमृतचंद्र आचार्यदेवने "सर्वको देखनेवाला, जाननेवाला, चैतन्यस्वरूप, स्वानुभव प्रसिद्ध और ज्ञान आनंदस्वरूप उत्कृष्ट आत्माको नमस्कार किया है।" (पंचास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार)

(८) सुवर्णपुरीके मानस्तंभकी महिमा करते पूज्य गुरुदेवश्री कहते थे कि, ६३ शलाका पुरुष मोक्षगामी जीव होते हैं, यह .... उन्नत मानस्तंभके जो भावसे दर्शन करता है वे जीव भी मोक्षगामी है। (५७, ६३, ५१)

(९) जिस कर्मके उदयके निमित्त नाभिके नीचेके अंग बड़ा हो और उपरका अंग छोटा हो उसे .... संस्थान कहते हैं। (हुण्डक, स्वाति, समचतुरस्र)

(१०) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंच मात्र .... लोकमें होते हैं। (मध्य-अधो, मध्य-उर्ध्व, मध्य)

(११) मोहनीय कर्मकी .... प्रकृति सम्यग्दर्शनकी घातक है। (एक, सात, चार)

(१२) पूज्य गुरुदेवश्री प्रवचनमें द्रव्यदृष्टि पर जोर देते थे क्योंकि द्रव्यदृष्टिसे ही .... की प्राप्ति होती है। (व्यवहार चारित्र, स्वर्ग, सम्यग्दर्शन)

(१३) ''गहराईमेंसे लगनी लगाकर पुरुषार्थ करे तो वस्तु मिले बिना न रहे, लगनी लगे तो ज्ञान और आनंद प्रगट होता ही है'' यह बात पूज्य बहिनश्रीके .... पुस्तकमें है। (वचनामृत, साधना और वाणी, आराधनाकी देवी)

(१४) वर्तमानकालमें केवलज्ञानीओंमेंसे अंतिम .... केवली कुंडलगिरिसे सिद्ध हुये हैं। (श्रीधर, जंबूस्वामी, नंदिमित्र)

(१५) सिद्धांत अनुसार प्रसिद्ध अर्थ वह .... है। (शब्दार्थ, भावार्थ, आगमार्थ)

(१६) परिणाम स्वयं स्वयंके .... के आश्रित होते हैं। (गुण, द्रव्य, पर्याय)

(१७) .... पुद्‌गल कर्म वर्गणाकी योग्यता रहित होते हैं। (सूक्ष्म-स्थूल, स्थूल-स्थूलतम, सूक्ष्मतम-स्थूलतम)

(१८) क्षायोपशमिक भाव .... वें गुणस्थान तक होता है। (७, १२, १३)

(१९) आत्मगुणोंकी किंचित् भी अभिव्यक्ति न होनेमें निमित्त होनेवाले सर्वघाति स्पर्धकोंके उदयके अभावको .... कहते हैं। (उदीरणा, उदयाभावीक्षय, क्षयोपशम)

(२०) जो आत्माके सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकल चारित्र और यथाख्यात चारित्ररूप परिणामोंका घात करे उसे .... कहते हैं। (कषाय, मिथ्यात्व, योग)

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) अनंतचतुष्टय	(६) औपशमिक	(११) सात	(१६) द्रव्य
(२) अगुरुलघुत्व	(७) प्रवचनसार	(१२) सम्यग्दर्शन	(१७) सूक्ष्मतम स्थूलतम
(३) सप्तभंगी	(८) ६३	(१३) वचनामृत	(१८) १२
(४) विभाव	(९) स्वाति	(१४) श्रीधर	(१९) उदयाभावीक्षय
(५) नय	(१०) मध्य	(१५) आगमार्थ	(२०) कषाय

पंच परमेष्ठीके गुण

अरिहंत (४६ गुण)

(बाह्य गुण) (३४ अतिशय)

१–मल-मूत्रका अभाव
२–प्रस्वेदका अभावन
३–श्वेत रक्त
४–समचतुस्र संस्थान
५–वज्रऋषभनाराच संहनन
६–अद्‌भुत रूप
७–अति सुगंधित शरीर
८–१००८ उत्तम लक्षण
९–अतुल बल
१०–प्रियवचन।

केवलज्ञान होने पर

१–उपसर्गका अभाव
२–अदयाका अभाव
३–शरीरकी छाया नहीं पड़ती
४–चार मुख दिखलाई देते हैं
५–सर्व विद्याओंका स्वामित्व
६–नेत्रोंकी पलके नहीं झपकती
७–सौ योजन तक सुभिक्षता
८–आकाशगमन
९–कवलाहारका अभाव
१०–नख-केश नहीं बढ़ते

देवकृत चौदह अतिशय

१–सकल अर्द्धमागधी भाषा
२–सर्व जीवोंमें परस्पर मैत्रीभाव
३–सर्व ऋतुओंके फल-फूल एक ही समय फलना
४–दर्पण समान भूमि
५–कंटकरहित भूमि
६–मंद सुगंध पवन
७–सर्वको आनन्द
८–गंधोदक वृष्टि
९–चरणोंके नीचे कमलकी रचना
१०–सर्व धान्योंकी उत्पत्ति
११–दसों दिशाएँ निर्मल होना
१२–आकाशमें देवोंके आह्वान शब्द तथा जय जय ध्वनि
१३–धर्मचक्रका आगे चलना
१४–अष्ट मंगल द्रव्योंका आगे चलना। (छत्र, ध्वजा, दर्पण, कलश, चँवर, झारी, पंखा, ठौना)

आठ प्रातिहार्य

१–अशोकवृक्ष
२–पुष्पवृष्टि
३–दिव्यध्वनि
४–चँवर
५–सिंहासन
६–भामंडल
७–दुंदुभि
८–तीन छत्र

अभ्यन्तर गुण

अनंतदर्शन
अनंतज्ञान
अनंतसुख
अनंतवीर्य

सिद्ध (८ गुण)

१–सम्यक्‌त्व,
२–दर्शन
३–ज्ञान
४–वीर्य
५–अगुरुलघुत्व
६–अवगाहनत्व
७–सूक्ष्मत्व
८–अव्याबाधत्व

आचार्य (३६ गुण)

उत्तमक्षमादि १० धर्म

१–उत्तम क्षमा
२–उत्तम मार्दव
३–उत्तम आर्जव
४–उत्तम सत्य
५–उत्तम शौच
६–उत्तम संयम
७–उत्तम तप
८–उत्तम त्याग
८–उत्तम आकिंचन्य
१०–उत्तम ब्रह्मचर्य

छह बाह्यतप

१. अनशन
२–अवमौदर्य
३–वृत्तिपरिसंख्यान
४–रसपरित्याग
५–विविक्त शय्यासन

आचार्य

६–कायक्लेश

६ अभ्यंतर तप

१–प्रायश्चित्त

२–विनय

३–वैयावृत्य

४–स्वाध्याय

५–व्युत्सर्ग

६–ध्यान

पांच आचार

१–दर्शनाचार

२–ज्ञानाचार

३–चारित्राचार

४–तपाचार

५–वीर्याचार

छह आवश्यक

१–सामायिक

२–वंदना,

३–चौबीस तीर्थंकर अथवा पंचपरमेष्ठीकी स्तुति

४–प्रतिक्रमण

५–स्वाध्याय

६–कायोत्सर्ग

तीन गुप्ति

१–मनोगुप्ति

२–वचनगुप्ति

३–कायगुप्ति)

उपाध्याय(२५ गुण)

११ अंग	**१४ पूर्व**
१-आचारांग	१-उत्पादपूर्व
२-सूत्रकृतांग	२-अग्रयाणीपूर्व
३-स्थानांग	३-वीर्यप्रवादपूर्व
४-समवायांग	४-अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व
५-व्याख्याप्रज्ञप्ति	५-ज्ञानप्रवादपूर्व
६-ज्ञातृधर्मकथांग	६-सत्यप्रवादपूर्व
७-उपासकाध्यानांग	७-आत्मप्रवादपूर्व
८-अंतकृतदशांग	८-कर्मप्रवादपूर्व
९-अनुत्तरोपपादिक-दशांग	९-प्रत्याख्यानपूर्व
	१०-विद्यानुवादपूर्व
१०-प्रश्नव्याकरणांग	११-कल्याणवादपूर्व
११-विपाकसूत्र	१२-प्राणवादपूर्व
	१३-क्रियाविशालपूर्व
	१४-लोकबिंदुसार पूर्व

दिगम्बरधर्मकी मान्यता अनुसार वर्तमानकालमें अधिकांश श्रुतका लोप हो गया है। इसलिये वर्तमानमें २५ मूलगुणधारी उपाध्याय होते नहीं है। उपचारसे जिस मुनिराजको आचार्य परमेष्ठी संघके मुनिओंको पढ़ानेका दायित्व देते हैं उसे उपाध्याय कहा जाता है।

[आचार्य, उपाध्याय और साधु—यह तीनों निश्चयरत्नत्रय अर्थात् शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्मरूप जो आत्मस्वरूपका साधन है उसके द्वारा अपने आत्मामें सदैव तत्पर (सावधान–जागृत) रहते हैं; बाह्यमें २८ मूलगुणके धारक होते हैं। उनके पास दयाका उपकरण पींछी, शौचका उपकरण कमंडल और ज्ञानका उपकरण सुशास्त्र होते हैं। वे शास्त्र कथित ४६ दोष (३२ अंतराय तथा १४ आहार दोष रहित)से रहित शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं।—वे ही मोक्षमार्गके साधक सच्चे साधु है और वे गुरु कहलाते हैं।]

साधु (२८ गुण)

५ महाव्रत

१–हिंसा २–असत्य

३–चोरी ४–अब्रह्म

५–परिग्रहको विरतिरूप पाँच प्रकार

५ समिति–

६–ईर्या ७–भाषा

८–एषणा

९–आदाननिक्षेपण

१०–प्रतिष्ठापन

११-१५ इन्द्रियनिरोध

पाँच इन्द्रियोंके विषयोंमें इष्ट–अनिष्टपना न मानना।

छह आवश्यक

१६–सामायिक

१७–वंदना,

१८–चौबीस तीर्थंकर अथवा पंचपरमेष्ठीकी स्तुति

१९–प्रतिक्रमण

२०–स्वाध्याय

२१–कायोत्सर्ग

२२-केशलोंच

२३–वस्त्रत्याग (दिगम्बरत्व)

२४–अस्नानता

२५–भूमिशयन

२६–अदन्तधावन

२७–खड़े-खड़े आहार

२८–एक बार आहार

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-०० से ६-२० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-१५ से ४-१५ : श्री नियमसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-१५ से ४-४५ : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ८-०० से ९-०० : श्री परमात्मप्रकाश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

✻ इस वर्ष भादों माहका पर्युषणपर्व ज्ञानवैराग्यभीनी तत्त्वोपासना, मुनीन्द्रमहिमा, पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीकी उपकारमहिमाकी दृष्टिसे प्रभावनापूर्ण रहा। पर्युषणपर्व आराधनाके लिये बाहरगाँवसे अनेक मुमुक्षु महेमान पधारे थे। विधानपूजाके समय विशाल परमागममन्दिर एवं प्रवचनके समय स्वाध्यायमंदिर भर जाता था। क्षमावणीपर्वके दिन, इस साधनातीर्थकी पवित्र यात्रा एवं पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य बहिनश्रीके प्रति क्षमावणी स्तुतिपूर्वक क्षमायाचनाके लिये अन्य गाँवोंसे अधिक संख्यामें मुमुक्षु महानुभाव पधारे थे।

❀ **'समयसार गुर्जरभाषा अनुवाद' पूर्णाहुतिका वार्षिक दिन-विजयादशमी :** श्री समयसार परमागमका गुर्जर भाषा अनुवादकी पूर्णाहूतिका वार्षिक दिन, आसो शुक्ल दशमी (विजयादशमी) ता. २-१०-२०२५ गुरुवारके रोज ग्रंथाधिराज श्री समयसारकी, विशेष भक्तिपूर्वक मनाया जायेगा।

क्षमापना

आत्मधर्मका लेखन-संपादन पूज्य गुरुदेवश्रीकी कृपादृष्टिमें सिर्फ स्व-परके आत्मार्थकी पुष्टि हो यह एक ही ध्येयपूर्वक किया जा रहा है; हृदयमें देव-गुरु-धर्मकी भक्तिपूर्वक और साधर्मी-प्रेमपूर्वक इसका संकलन किया जाता है। फिर भी यदि कोई भूल हो गई हो या किसीके मनको ठेस(चोट) पहुँची हो तो अंतरके भावपूर्वक देव-गुरु-धर्म, प्रत्यक्ष उपकारी संतों तथा साधर्मी मुमुक्षुओंसे क्षमायाचना करता हूँ। –तंत्रीश्री

आत्मधर्म सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

आप सभी हमारे मुमुक्षु हैं। हिन्दी आत्मधर्म आपको बहुत समयसे भेज रहे है। अब ट्रस्टने निर्णय लिया है कि जो ग्राहक १५ वर्षसे अधिक समयसे है उनको अब आगामी अंक भेजना बंद किया जायेगा। यदि जिन्हें आत्मधर्म मासिक पुनः चालु करवाना चाहते हो तो वे आत्मधर्म कार्यालयको एक संमतिपत्र भेजे जिससे आपको पुनः ५ वर्षके लिये अंक रीन्यु किया जायेगा। इसलिये आप अपना उचित उत्तर (संमति पत्र) भेजे उसके अनुसार आपको अंक भेजा जायेगा।

इसके अलावा यदि आप फीझीकल कोपी नहीं चाहते हो और **email** अथवा **whatsapp** पर **PDF** चाहते हो तो उस अनुसार आपको भेजनेमें आयेगा।

आप अपना संमतिपत्र : आत्मधर्म कार्यालय अथवा मेल अथवा वोटसेप पर भेज सकते है।

आत्मधर्म कार्यालय,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (जि. भावनगर)

email contact@kanjiswami.org
Whatsapp No 9276867578

सम्मति पत्र

प्रति श्री आत्मधर्म कार्यालय

मैं ....

सूचित करता हूं कि आपके द्वारा भेजे जानेवाला आत्मधर्म अंकका हम नियमित पठन एवं स्वाध्याय करते है। तथा किसी भी प्रकारका अविनय अशातना हमारे द्वारा नहीं हो रही है। इसलिये हमारा आत्मधर्म अंक रीन्यु करनेकी विनती करते है।

आत्मधर्म फिझीकल /**email** / **whatsapp..........** .... द्वारा हमें भेज देंगे।

ग्राहक नंबर : ....

नाम : ....

पता : ....

....

....

संपर्क नंबर : ....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्गार

• आत्मामें भेदज्ञानपूर्वक, जिनका अवलम्बन लेने पर जो आत्म-धर्म होता है वह अनुभव-प्रकाश है। उस समय चारित्रगुणकी मिश्रदशा होनेसे आंशिक निर्मलता व आंशिक मलिनता होती है, वह मलिनता कर्मके कारणसे नहीं होती।७०७।

• आत्माका वेदन कैसै हो ?–कि वह कोई निमित्त और रागमें प्रेम करनेसे नहीं होता। जो चेतनकी चेतना है, वह ज्ञान-दर्शन द्वारा खयालमें आती है; वह परसे तो नहीं बल्कि ज्ञानके सिवाय अन्य गुणोंसे भी खयालमें नहीं आती–ऐसे ज्ञान-लक्षण द्वारा चेतना जाननेमें, चेतना द्वारा, चेतन-सत्ताका निर्णय होता है। जब ज्ञानमें चेतना खयालमें आयी तभी ऐसा निर्णय हुआ कि यह चेतन-सत्ता है। जानने-देखने वाली वस्तु द्वारा सुख-अंश प्रकट हुआ तभी चेतन-सत्ताका निर्णय हुआ।७०८।

• जब आत्माका अनुभव होता है तब बाह्य वेदनाका अनुभव नहीं होता। आत्मा शुद्ध-आनन्दकन्द है–इसमें रमणता होने पर चाहे जैसे परिषहके ढेर हों, पर उनका वेदन नहीं होता। जिन्होंने चारित्रको कष्टरूप माना है, वे चारित्रके स्वरूपको समझे ही नहीं है–वे अज्ञानी हैं; चारित्रको गाली देते हैं, उसका अवर्णवाद करते हैं। जो देव-गुरु-शास्त्रका अवर्णवाद करते हैं वे दर्शन-मोहनीयका बन्ध बांधते हैं।७०९।

• ज्ञानद्वारमें, स्वरूप-शक्तिको जानना। ज्ञान लक्षण व लक्ष्यरूप आत्मा अपने ज्ञानमें भासित होते हैं, तब सहज आनन्दधारा बहती है–वही अनुभव है।७१०।

• जगतमें आत्माके भान वाले संत, तथा जो गुणवन्त कहलाते हैं–वे आत्मानुभव करो! दया-दानादिके होने वाले परिणाम आस्रव हैं; धर्म नहीं–ऐसा जानो! जो बाह्य-तपश्चर्या करते हैं अभिग्रह करते हैं उनको गुणवंत नहीं बतलाया है। जो आनंदस्वभावकी खोज करते हैं वे गुणवंत संत हैं। जो क्रिया-कांड करते हैं, उन्हें संत नहीं कहते। सारी जीवराशि स्वरूपका अनुभव करो! (यह) अनुभव मुक्तिका एक मात्र मार्ग है।७११।

• नमस्कार! यह कोई विकल्पकी बात नहीं। मेरा शुद्ध आत्मा द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मसे रहित है। उसमें मैं पिरणमित होता हूँ, उसीमें मेरा झुकाव है कर्ममें नहीं, रागमें नहीं, शरीरमें नहीं है। रागकी पर्यायका लक्ष्य छोड़कर आत्मामें झुकना ही सच्चा भाव-नमस्कार है; तथा जो विकल्प आते हैं सो द्रव्य-नमस्कार है।७१३।

आत्मधर्म
सितम्बर २०२५
अंक-१, वर्ष २०

Posted at Songadh PO
Publish on 5-9-2025
Posted on 5-9-2025

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org